

## विषय-सूची

प्रश्न

१. भाषा-विज्ञान की परिभाषा दीजिए । वह कला है अथवा विज्ञान ?

२. भाषा-विज्ञान और व्याकरण के सम्बन्ध की सम्यक् सीमांसा कीजिए । भाषा-विज्ञान से व्याकरण और साहित्य के अध्ययन और अध्यापन में कहीं तक सहायता मिलती है, स्पष्ट कीजिए ।

३. भाषा-विज्ञान के प्रमुख अंगों का परिचय दीजिए तथा उनकी उपयोगिता का विवेचन कीजिए ।

४. सिद्ध कीजिए, भाषा-विज्ञान की परम्परा बहुत प्राचीन काल से अविच्छिन्न चली आती है ।

५. आधुनिक भाषा विज्ञान के प्रारम्भिक इतिहास का दिग्दर्शन कराइये ।

६. भाषा की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न प्रचलित मतों का उल्लेख करने हुए, कारण सहित व्याख्या कीजिए कि कौन-सा मत अधिक तर्कसंगत है ?

७. 'एक भाषा-विज्ञानी के लिए साहित्यिक भाषा की अपेक्षा बोलियाँ अधिक महत्वपूर्ण हैं ।' आलोचना करते हुए बोली, विभाषा, भाषा और राष्ट्रभाषा का अन्तर स्पष्ट कीजिये ।

८. भाषा परिवर्तनशील क्यों कही जाती है ? परिवर्तन के मुख्य-मुख्य कारणों की विवेचना उदाहरण सहित कीजिए ।

अथवा

भाषा के बाह्य तथा आन्तरिक रूप में विकास और परिवर्तन के कारणों पर प्रकाश डालिए ।

९. दो भाषाओं के परस्पर सम्बन्ध को निर्धारण करने के प्रमुख तरीकों का उल्लेख करते हुए भाषा-विभाजन की पद्धतियों में गुण-दोषों का विवेचन कीजिए ।

१०. भाषा का साहित्यमूलक या सन्दर्भ-रचना की दृष्टि से वर्गीकरण कीजिए। उस वर्गीकरण की उपयोगिता पर भी प्रकाश डालिए। ४२

११. भाषाओं का पारिवारिक वर्गीकरण किन सिद्धान्तों के आधार पर किया जाता है। प्रत्येक वर्ग का सक्षिप्त परिचय दीजिए। ४८

१२. भारतीय (आर्य) मनुष्यों के मूल निवास स्थान के सम्बन्ध में विभिन्न मतों पर प्रकाश डालिए। ५४

१३. रूप-परिवर्तन या भाषा के दाह समुह में परिवर्तन किन प्रकार होता है और उस परिवर्तन के मुख्य कारण क्या माने जाते हैं ? ६०

१४. बौद्ध-नियमों का परिचय दीजिए। ६४

१५. आर्य परिवर्तन की दिशाओं के आधार पर भाषाओं को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। उन भागों का नाम बताइए और प्रत्येक भाग के अन्तर्गत आने वाले भाषाओं का नाम भी दीजिए। ६८

१६. दाहार्थ में परिवर्तन होने के मुख्य कारण क्या हैं ? दाहार्थ उदाहरण देकर अपने उत्तर को पूर्ण कीजिए। ७२

१७. साहित्यिक प्रति समुह का क्या अर्थ है ? इस समुह में कि-कि भाषाएँ आती हैं ? इन भाषाओं के अन्तर्गत आने वाले भाषाओं का नाम भी दीजिए। ७८

उत्तरदाता

हिन्दी साहित्य के विकास पर एक लेख लिखिए।

१८. साहित्यिक वर्गीकरण के मुख्य सिद्धान्त क्या हैं ? इन सिद्धान्तों के अन्तर्गत आने वाले भाषाओं का नाम भी दीजिए। ८४

१९. साहित्यिक परिवर्तन के मुख्य कारण क्या हैं ? इन कारणों के अन्तर्गत आने वाले भाषाओं का नाम भी दीजिए। ९०

उत्तरदाता

२०. साहित्यिक भाषाओं की विशेषताएँ क्या हैं ? इन विशेषताओं के अन्तर्गत आने वाले भाषाओं का नाम भी दीजिए। ९६

२१. साहित्यिक भाषाओं के अन्तर्गत आने वाले भाषाओं का नाम भी दीजिए। १०२

२२. साहित्यिक भाषाओं के अन्तर्गत आने वाले भाषाओं का नाम भी दीजिए। १०८

२३. साहित्यिक भाषाओं के अन्तर्गत आने वाले भाषाओं का नाम भी दीजिए। ११४

## विषय-सूची

प्रश्न

१. भाषा-विज्ञान की परिभाषा दीजिए । यह क्या है क्या विज्ञान ?

२. भाषा-विज्ञान और व्याकरण के सम्बन्ध की समझ कीजिए । भाषा-विज्ञान में व्याकरण और साहित्य के सम्बन्ध और सम्पादन में कहीं तक महाभाषा मिलती है, स्पष्ट कीजिए ।

३. भाषा-विज्ञान के प्रमुख अंगों का परिचय दीजिए तथा उनकी उपयोगिता का विवेचन कीजिए ।

४. विद् कीजिए, भाषा-विज्ञान की परम्परा बहुत प्राचीन बान है अविच्छिन्न पत्नी घाती है ।

५. प्रागुनिक भाषा विज्ञान के प्रारम्भिक इतिहास का शिरोमणि बताइये ।

६. भाषा की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न प्रचलित मतों का उल्लेख करते हुए, कारण सहित व्याख्या कीजिए कि कौन-सा मत अधिक संतुष्टिजनक है ?

७. 'एक भाषा-विज्ञानी के लिए साहित्यिक भाषा की अपेक्षा मौखिक अधिक महत्वपूर्ण है।' ध्यालोचना करते हुए बोली, विभाषा, भाषा और राष्ट्रभाषा का अन्तर स्पष्ट कीजिये ।

८. भाषा परिवर्तनशील क्यों कहो जाती है । परिवर्तन के मुख्य-मुख्य कारणों की विवेचना उदाहरण सहित कीजिए ।

प्रश्न

भाषा के माहा तथा धाम्यन्तर रूप में विकास और परिवर्तन के कारणों पर प्रकाश डालिए ।

९. दो भाषाओं के परस्पर सम्बन्ध को निर्धारण करने के प्रमुख तरीकों का उल्लेख करते हुए भाषा-विभाजन की पद्धतियों के गुण-दोषों का विवेचन कीजिए ।

१०. भाषा का साहित्यमूलक या शब्द-रचना की दृष्टि से वर्गीकरण कीजिए । उस वर्गीकरण की उपयोगिता पर भी प्रकाश डालिए ४२

११. भाषाओं का पारिवारिक वर्गीकरण किन सिद्धान्तों के आधार पर किया जाता है । प्रत्येक धर्म का संक्षिप्त परिचय दीजिए । ४८

१२. भारतीय (भार्य) मनुष्यों के मूल निवास स्थान के सम्बन्ध में विभिन्न मतों पर प्रकाश डालिए । ५४

१३. रूप-परिवर्तन या भाषा के शब्द-समूह में परिवर्तन किन प्रकार होता है और उस परिवर्तन के मुख्य कारण क्या माने जाते हैं ? ६०

१४. बौद्धिक-नियमों का परिचय दीजिए । ६४

१५. धर्म परिवर्तन की दिशाओं के आधार का उल्लेख कीजिए । उपयुक्त उदाहरण भी दीजिए । ६८

१६. संशोधन में परिवर्तन होने के मुख्य कारण क्या हैं ? उपयुक्त उदाहरण देकर अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए । ७३

१७. संस्कृत ध्वनि-समूह का वर्गीकृत परिचय देकर यह बताइये कि हिन्दी ध्वनि-समूह से उसकी तुलना में क्या-क्या परिवर्तन हुए हैं ? ७८

अथवा

हिन्दी ध्वनियों के विकास पर एक लेख लिखिये ।

१८. ध्वनि-वर्गीकरण के मुख्य सिद्धान्त क्या माने जाते हैं ? यह बताने हुए ध्वनियों का वर्गीकरण काँट्रिए । ८३

१९. ध्वनि-परिवर्तन के रूप (दशाएँ) और कारणों की संशोद्धा विवेचना कीजिए । ८६

अथवा

'ध्वनि प्रयत्न-लापस की दशा में परिवर्तित होती है।' इस कथन को स्पष्ट कीजिए ।

२०. ध्वनि नियम क्या है ? ग्रिम द्वारा ध्वनि-नियम (Grims Law) की सम्यक् समीक्षा कीजिए । क्या ध्वनि-नियम भी उसी प्रकार सत्य है जैसे अन्य वैज्ञानिक नियम ? ९६

२१. सामान्य और वनेर के ध्वनि-नियम संशोधन पर दृष्टि डालने हुए अन्य ध्वनि-नियमों का विवेचन कीजिए । १०८

२२. भारतीय-परिवार की विशेषताओं और संस्कृति पर प्रकाश डालने हुए उसके विभाजन का भी परिचय दीजिए । १११

# विषय-सूची

प्रश्न

१. भाषा-विज्ञान की परिभाषा दीजिए । वह क्या है प्रयत्न विज्ञान ?

२. भाषा-विज्ञान और व्याकरण के सम्बन्ध को सम्यक् समझना कीजिए । भाषा-विज्ञान से व्याकरण और साहित्य के अध्ययन और अध्यापन में कहाँ तक सहायता मिलती है, स्पष्ट कीजिए ।

३. भाषा-विज्ञान के प्रमुख अंगों का परिचय दीजिए तथा उनकी उपयोगिता का विवेचन कीजिए ।

४. सिद्ध कीजिए, भाषा-विज्ञान की परम्परा बहुत प्राचीन काल से अविच्छिन्न चली आती है ।

५. आधुनिक भाषा विज्ञान के प्रारम्भिक इतिहास का विवरण कराइये ।

६. भाषा की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न प्रचलित मतों का उल्लेख करने हुए, कारण सहित व्याख्या कीजिए कि कौन-सा मत अधिक तर्कसंगत है ?

७. 'एक भाषा-विज्ञानी के लिए साहित्यिक भाषा की अपेक्षा बोलियाँ अधिक महत्वपूर्ण हैं ।' आलोचना करते हुए बोलो, विभाषा, भाषा और राष्ट्रभाषा का अन्तर स्पष्ट कीजिये ।

८. भाषा परिवर्तनशील क्यों कही जाती है । परिवर्तन के मुख्य-मुख्य कारणों की विवेचना उदाहरण सहित कीजिए ।

प्रश्न

भाषा के बाह्य तथा आन्तरिक रूप में विकास और परिवर्तन के कारणों पर प्रकाश डालिए ।

९. दो भाषाओं के परस्पर सम्बन्ध को निर्धारण करने के प्रमुख तरीकों का उल्लेख करते हुए भाषा-विभाजन की पद्धतियों का गुण-दोषों का विवेचन कीजिए ।

१०. भाषा का आकृतिमूलक या शब्द-रचना की दृष्टि से वर्गीकरण कीजिए। उस वर्गीकरण की उपयोगिता पर भी प्रकाश डालिए। ४२

११. भाषाओं का पारिवारिक वर्गीकरण किन सिद्धान्तों के आधार पर किया जाता है। प्रत्येक वर्ग का संक्षिप्त परिचय दीजिए। ४८

१२. भारोपीय (आर्य) मनुष्यों के मूल निवास स्थान के सम्बन्ध में विभिन्न मतों पर प्रकाश डालिए। ५४

१३. रूप-परिवर्तन या भाषा के शब्द-समूह में परिवर्तन किम प्रकार होता है और उस परिवर्तन के मुख्य कारण क्या माने जाते हैं ? ६०

१४. बौद्धिक-नियमों का परिचय दीजिए। ६४

१५. आर्य-परिवर्तन की दिशाओं के आधार का उल्लेख कीजिए। अप्रयुक्त उदाहरण भी दीजिए। ६८

१६. दशार्थ में परिवर्तन होने के मुख्य कारण क्या हैं ? अप्रयुक्त उदाहरण देकर अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए। ७३

१७. गरुड ध्वनि-समूह का वर्गीकृत परिचय देकर यह बताइये कि हिन्दी ध्वनि-समूह से उसकी तुलना में क्या-क्या परिवर्तन हुए हैं ? ७८

अथवा

हिन्दी ध्वनियों के विकास पर एक लेख लिखिये।

१८. ध्वनि-वर्गीकरण के मुख्य सिद्धान्त क्या माने जाते हैं ? यह बतलाते हुए ध्वनियों का वर्गीकरण कीजिए। ८३

१९. ध्वनि-परिवर्तन के रूप (दशाएँ) और कारणों की मोशहूर विवेचना कीजिए। ८६

अथवा

'ध्वनि प्रयत्न-नापव की दशा में परिवर्तन होती है।' इस कथन को स्पष्ट कीजिए।

२०. ध्वनि नियम क्या है ? प्रिम हन ध्वनि-नियम (Gram's Law) की सम्यक् समीक्षा कीजिए। क्या ध्वनि-नियम भी उगी प्रकार प्रकाट्य है जैसे अन्य वैज्ञानिक नियम ? ९९

२१. प्रागर्गित और वनेर के प्रिम-नियम गतोपन पर दृष्टि डालने हुए अन्य ध्वनि-नियमों का विश्लेषण कीजिए। १०८

२२. भारोपीय-परिवार की विशेषताओं और महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए उसके विभाजन का भी परिचय दीजिए। १११

# विषय-सूची

प्रश्न

१. भाषा-विज्ञान की परिभाषा दीजिए । यह क्या है क्या विज्ञान ?

२. भाषा-विज्ञान और व्याकरण के सम्बन्ध को सम्यक् समझना सीखिए । भाषा-विज्ञान में व्याकरण और साहित्य के अध्ययन और सम्पादन में कहीं तक महत्त्वता मिलती है, स्पष्ट कीजिए ।

३. भाषा-विज्ञान के प्रमुख धर्मों का परिचय दीजिए तथा उनकी उपयोगिता का विवेचन कीजिए ।

४. निम्न कीजिए, भाषा-विज्ञान की परम्परा बहुत प्राचीन काल से अविच्छिन्न पची गयी है ।

५. भाषुनिक भाषा विज्ञान के प्रारम्भिक इतिहास का विवरण कराइये ।

६. भाषा की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न प्रचलित मतों का उल्लेख करो हुए, कारण सहित समझा कीजिए कि कौन-सा मत अधिक तर्कसंगत है ?

७. 'एक भाषा-विज्ञानी के लिए साहित्यिक भाषा की अपेक्षा योलिया अधिक महत्वपूर्ण है ।' आलोचना करते हुए योली, विभाषा, भाषा और राष्ट्रभाषा का अन्तर स्पष्ट कीजिये ।

८. भाषा परिवर्तनशील क्यों कही जाती है । परिवर्तन के मुख्य-मुख्य कारणों की विवेचना उदाहरण सहित कीजिए ।

अथवा

भाषा के बाह्य तथा आन्तरिक रूप में विकास और परिवर्तन के कारणों पर प्रकाश डालिए ।

९. दो भाषाओं के परस्पर सम्बन्ध को निर्धारण करने के प्रमुख तरीकों का उल्लेख करते हुए भाषा-विभाजन की पद्धतियों ७ गुण-दोषों का विवेचन कीजिए ।

१०. भाषा का साहित्यमूलक या शब्द-रचना की दृष्टि से वर्गीकरण कीजिए। उस वर्गीकरण की उपयोगिता पर भी प्रकाश डालिए। ४२

११. भाषाओं का पारिवारिक वर्गीकरण किन सिद्धान्तों के आधार पर किया जाता है। प्रत्येक वर्ग का संक्षिप्त परिचय दीजिए। ४८

१२. भारोपीय (भार्य) मनुष्यों के मूल निवास स्थान के सम्बन्ध में विभिन्न मनो पर प्रकाश डालिए। ५४

१३. रूप-परिवर्तन या भाषा के शब्द-समूह में परिवर्तन किम प्रकार होता है और उस परिवर्तन के मुख्य कारण क्या माने जाते हैं? ६०

१४. बौद्धिक-नियमों का परिचय दीजिए। ६४

१५. अर्थ परिवर्तन की दिशाओं के आधार का उन्लेश कीजिए। उपयुक्त उदाहरण भी दीजिए। ६८

१६. शब्दार्थ में परिवर्तन होने के मुख्य कारण क्या हैं? उपयुक्त उदाहरण देकर अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए। ७३

१७. सम्पूर्ण ध्वनि-समूह का वर्गीकृत परिचय देकर यह बताइये कि हिन्दी ध्वनि-समूह में उसकी मूलता में क्या-क्या परिवर्तन हुए हैं? ७८

अथवा

हिन्दी ध्वनियों के विकास पर एक लेख लिखिये।

१८. ध्वनि-वर्गीकरण के मुख्य सिद्धान्त क्या माने जाते हैं? यह समझाते हुए ध्वनियों का वर्गीकरण कीजिए। ८३

१९. ध्वनि-परिवर्तन के रूप (दशाएँ) और कारणों की मोशहर्मा विवेचना कीजिए। ८६

अथवा

'ध्वनि प्रत्यक्ष-लाघव की दशा में परिवर्तित होती है।' इस कथन को स्पष्ट कीजिए।

२०. ध्वनि नियम क्या हैं? विम कृत ध्वनि-नियम (Gram's Law) की सम्यक् समीक्षा कीजिए। क्या ध्वनि-नियम भी उन्नी प्रकार कहाएय हैं जंगे अन्य वैज्ञानिक नियम? ९६

२१. प्रागर्त और वनर के विम-नियम मरुपन पर दृष्टि डालने हुए अन्य ध्वनि-नियमों का विवेचन कीजिए। १०८

२२. भारोपीय-परिवार की विवेचनाओं और कल्प पर प्रकाश डालते हुए उनके विभाजन का भी परिचय दीजिए। १११



# विषय-सूची

प्रश्न

१. भाषा-विज्ञान की परिभाषा दीजिए । यह क्या है प्रत्यक्ष विज्ञान ?

२. भाषा-विज्ञान और व्याकरण के सम्बन्ध की समझ मोमोना कीजिए । भाषा-विज्ञान में व्याकरण और साहित्य के अध्ययन और सम्पादन में क्या एक महत्वाकांक्षी भूमिका है, स्पष्ट कीजिए ।

३. भाषा-विज्ञान के प्रमुख घटकों का परिचय दीजिए तथा उनकी उपयोगिता का विवेचन कीजिए ।

४. निम्न कीजिए, भाषा-विज्ञान की परम्परा बहुत प्राचीन काल से अस्तित्व में रही होती है ।

५. आधुनिक भाषा विज्ञान के आरम्भिक इतिहास का विवरण बताइये ।

६. भाषा की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न प्रचलित मतों का उल्लेख करते हुए, कारण सहित व्याख्या कीजिए कि कौन-सा मत अधिक तर्कसंगत है ?

७. 'एक भाषा-विज्ञानी के लिए साहित्यिक भाषा की अवस्था योतिषी अधिक महत्वपूर्ण है ।' आलोचना करते हुए बोलो, विभाषा, भाषा और राष्ट्रभाषा का अन्तर स्पष्ट कीजिये ।

८. भाषा परिवर्तनशील क्यों कही जाती है । परिवर्तन के मुख्य-मुख्य कारणों का विवेचन उदाहरण सहित कीजिए ।

प्रश्न

भाषा के बाह्य तथा आन्तरिक रूप में विकास और परिवर्तन के कारणों पर प्रकाश डालिए ।

९. दो भाषाओं के परस्पर सम्बन्ध को निर्धारण करने के प्रमुख तरीकों का उल्लेख करते हुए भाषा-विभाजन की पद्धतियों में गुण-दोषों का विवेचन कीजिए ।

१०. भाषा का साहित्यमूलक या शब्द-रचना की दृष्टि से वर्गीकरण कीजिए। उस वर्गीकरण की उपयोगिता पर भी प्रकाश डालिए। ४२

११. भाषाओं का पारिवारिक वर्गीकरण किन सिद्धान्तों के आधार पर किया जाता है। प्रत्येक वर्ग का संक्षिप्त परिचय दीजिए। ४८

१२. भारतीय (भार्य) मनुष्यों के मूल निवास स्थान के सम्बन्ध में विभिन्न मतों पर प्रकाश डालिए। ५४

१३. रूप-परिवर्तन या भाषा के शब्द-समूह में परिवर्तन किम प्रकार होता है और उस परिवर्तन के मुख्य कारण क्या माने जाते हैं ? ६०

१४. बौद्धिक-नियमों का परिचय दीजिए। ६४

१५. अथ परिवर्तन की दिशाओं के आधार का उन्वेग कीजिए। उपयुक्त उदाहरण भी दीजिए। ६८

१६. शब्दांश में परिवर्तन होने के मुख्य कारण क्या हैं ? उपयुक्त उदाहरण देकर अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए। ७३

१७. सरल ध्वनि-समूह का वर्गीकृत परिचय देकर यह बताइये कि हिन्दी ध्वनि-समूह से उसकी तुलना में क्या-क्या परिवर्तन हुए हैं ? ७८

अथवा

हिन्दी ध्वनियों के विकास पर एक लेख लिखिये।

१८. ध्वनि-वर्गीकरण के मुख्य सिद्धान्त क्या माने जाते हैं ? यह यन्त्रादि हुए ध्वनियों का वर्गीकरण का'जिए। ८३

१९. ध्वनि-परिवर्तन के रूप (दिशाएँ) और कारणों की मोटाहट्टा विवेचना कीजिए। ८६

अथवा

'ध्वनि प्रयत्न-मापक की दशा में परिवर्तित होती है।' इस कथन को स्पष्ट कीजिए।

२०. ध्वनि नियम क्या है ? ग्रिम का ध्वनि-नियम (Gram's Law) की सम्यक् समीक्षा कीजिए। क्या ध्वनि-नियम भी उगी प्रकार कहाट्ट है जैसे अन्य वैज्ञानिक नियम ? ९६

२१. सागर, और वनर के ग्रिम-नियम मसोद्यन पर दृष्टि डालने हुए अन्य ध्वनि-नियमों का विवेचन कीजिए। १०८

२२. भारतीय परिवार की विशेषताओं और मूल्य पर प्रकाश डालते हुए उसके बिभाजन का भी परिचय दीजिए। १११

## विषय-सूची

### प्रश्न

१. भाषा-विज्ञान की परिभाषा दीजिए । वह कला है अथवा विज्ञान ?

२. भाषा-विज्ञान और व्याकरण के सम्बन्ध की सम्यक् सीमांसा कीजिए । भाषा-विज्ञान से व्याकरण और साहित्य के अध्ययन और अध्यापन में कहाँ तक सहायता मिलती है, स्पष्ट कीजिए ।

३. भाषा-विज्ञान के प्रमुख अंगों का परिचय दीजिए तथा उनकी उपयोगिता का विवेचन कीजिए ।

४. सिद्ध कीजिए, भाषा-विज्ञान की परम्परा बहुत प्राचीन काल से अविच्छिन्न चली आती है ।

५. आधुनिक भाषा विज्ञान के प्रारम्भिक इतिहास का दिग्दर्शन कराइये ।

६. भाषा की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न प्रचलित मतों का उल्लेख करते हुए, कारण सहित व्याख्या कीजिए कि कौन-सा मत अधिक तर्कसंगत है ?

७. 'एक भाषा-विज्ञानी के लिए साहित्यिक भाषा की अपेक्षा बोलिया अधिक महत्वपूर्ण है।' आलोचना करते हुए बोली, विभाषा, भाषा और राष्ट्रभाषा का अन्तर स्पष्ट कीजिये ।

८. भाषा परिवर्तनशील क्यों कहो जाती है । परिवर्तन के मुख्य-मुख्य कारणों की विवेचना उदाहरण सहित कीजिए ।

### अथवा

भाषा के बाह्य तथा आन्तरिक रूप में विकास और परिवर्तन के कारणों पर प्रकाश डालिए ।

९. दो भाषाओं के परस्पर सम्बन्ध को निर्धारण करने के प्रमुख तरीकों का उल्लेख करते हुए भाषा-विभाजन की पद्धतियों में गुण-दोषों का विवेचन कीजिए ।

१०. भाषा का साहित्यमूलक या शब्द-रचना की दृष्टि से वर्गीकरण कीजिए। उस वर्गीकरण की उपयोगिता पर भी प्रकाश डालिए ४२
११. भाषाओं का पारिवारिक वर्गीकरण किन सिद्धान्तों के आधार पर किया जाता है। प्रत्येक वर्ग का संक्षिप्त परिचय दीजिए। ४८
१२. भारोपीय (आर्य) मनुष्यों के मूल निवास स्थान के सम्बन्ध में विभिन्न मतों पर प्रकाश डालिए। ५४
१३. रूप-परिवर्तन या भाषा के शब्द-समूह में परिवर्तन किम प्रकार होता है और उस परिवर्तन के मुख्य कारण क्या माने जाते हैं ? ६०
१४. बौद्धिक-नियमों का परिचय दीजिए। ६४
१५. आर्य परिवर्तन की विभाषों के आधार का उल्लेख कीजिए। उपयुक्त उदाहरण भी दीजिए। ६८
१६. शब्दांश में परिवर्तन होने के मुख्य कारण क्या हैं ? उपयुक्त उदाहरण देकर अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए। ७३
१७. सम्पूर्ण ध्वनि-समूह का वर्गीकृत परिचय देकर यह बताइये कि हिन्दी ध्वनि-समूह से उसकी तुलना में क्या-क्या परिवर्तन हुए हैं ? ७८
- अथवा
- हिन्दी ध्वनियों के विकास पर एक लेख लिखिये।
१८. ध्वनि वर्गीकरण के मुख्य सिद्धान्त क्या माने जाते हैं ? यह यत्न करते हुए ध्वनियों का वर्गीकरण कीजिए। ८३
१९. ध्वनि-परिवर्तन के रूप (दशाएँ) और कारणों की मोटाहट विवेचना कीजिए। ८८
- अथवा
- ध्वनि प्रत्यक्ष-लाघव की दशा में परिवर्तित होती है। इस कथन को स्पष्ट कीजिए।
२०. ध्वनि नियम क्या है ? इस मूल ध्वनि-नियम (Gimson Law) की सम्यक् समीक्षा कीजिए। क्या ध्वनि-नियम भी उर्गी प्रकार कहाट्य है जैसे अन्य वैज्ञानिक नियम ? ९६
२१. सामान्य और खतर के ध्वनि-नियम समीक्षण पर दृष्टि डालते हुए अन्य ध्वनि-नियमों का विवेचन कीजिए। १०८
२२. भारोपीय-परिवार की विशेषताओं और मूल्य पर प्रकाश डालते हुए उसके विकास का भी परिचय दीजिए। १११

# विषय-सूची

प्रश्न

१. भाषा-विज्ञान की परिभाषा दीजिए । यह क्या है क्या विज्ञान ?

२. भाषा-विज्ञान और व्याकरण के सम्बन्ध की समझ दीजिए । भाषा-विज्ञान में व्याकरण और साहित्य के अध्ययन और अध्यापन में वहाँ तक महत्ता मिलती है, स्पष्ट कीजिए ।

३. भाषा-विज्ञान के प्रमुख प्रश्नों का परिषय दीजिए तथा उनकी उपयोगिता का विवेचन कीजिए ।

४. निम्न कीजिए, भाषा-विज्ञान की परम्परा बहुत प्राचीन काल से अविच्छिन्न रही है ।

५. प्रागुनिक भाषा विज्ञान के प्रारम्भिक इतिहास का विवरण कराइये ।

६. भाषा की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न प्रचलित मतों का उल्लेख करते हुए, कारण सहित सत्यता कीजिए कि कौन-सा मत अधिक तर्कमय है ?

७. 'एक भाषा-विज्ञानी के लिए साहित्यिक भाषा की अपेक्षा मौखिक अधिक महत्वपूर्ण है ।' आलोचना करते हुए योत्ती, विभाषा, भाषा और राष्ट्रभाषा का अन्तर स्पष्ट कीजिये ।

८. भाषा परिवर्तनशील क्यों कही जाती है । परिवर्तन के मुख्य-मुख्य कारणों का विवेचन उदाहरण सहित कीजिए ।

अथवा

भाषा के वाह्य तथा आन्तरिक रूप में विकास और परिवर्तन के कारणों पर प्रकाश डालिए ।

९. दो भाषाओं के परस्पर सम्बन्ध को निर्धारण करने के प्रमुख तरीकों का उल्लेख करते हुए भाषा-विभाजन की पद्धतियों का गुण-दोषों का विवेचन कीजिए ।

३४. हिन्दी सर्वनामों के रूप देकर उनकी व्युत्पत्ति पर प्रकाश डालिये । १६६

३५. हिन्दी प्रिया के बालों में सरलित बालों के फीन में रूप अवरोध रह गये हैं ? दोनों का सम्बन्ध स्थापित कीजिये । १७१

### अथवा

हिन्दी प्रियाओं की व्युत्पत्ति बताइये ।

३६. हिन्दी प्रिया की कान-रचना में वृद्धों के महत्व का विवेचन कीजिये । १७७

३७. सरलावाचक विशेषणों की व्युत्पत्ति स्पष्ट कीजिये । १८०

३८. हिन्दी भाषा के कुछ प्रमुख शब्दों की व्युत्पत्ति बताइये । १८४

३९. हिन्दी के उपसर्गों का संक्षिप्त परिचय दीजिये । १८८

४०. स्वराघात का भेदो सहित विवेचन करने हुए हिन्दी में उसकी विवर्धित स्थिति पर प्रकाश डालिए । १८९

४१. हिन्दी-भाषा की वैज्ञानिक परिभाषा दीजिये तथा उसके साहित्यिक रूप पर दृष्टि डालते हुए गद्दी बोली की उत्पत्ति और विकास पर एक लेख लिखिये । १९१

४२. दक्षिणी भाषा के विकास और साहित्य का परिचय देते हुए गद्दी बोली से उसका सम्बन्ध बताइये । १९७

४३. देवनागरी के उद्गम और विकास पर एक लेख लिखिए तथा उसके गुण और दोषों का विवेचन करते हुए कुछ सुधारात्मक सुभाव प्रस्तुत कीजिये । २०१

### परिशिष्ट

#### प्रश्न

४४. स्पष्ट कीजिए—

(क) भाषा की परिभाषा, (ख) भाषा अर्जित सम्पत्ति है, (ग) भाषा समीक्षावस्था से वियोगावस्था की ओर जाती है, (घ) भाषा-वृद्धि, (ङ) भाषा की सामान्य प्रवृत्तियाँ (संकेत रूप में) ।

४५. भाषा विज्ञान से अन्य विषयों का सम्बन्ध स्थापित कीजिए । २१०

४६. वाक्यों के प्रकार और वाक्य-गठन में परिचय के कारण कीजिये । २१४

पृष्ठ

२०७

१२. निम्न-दिन व्यक्ती हिन्दी कलाओं के मूल रूप  
(Direct or Nominative Form) तथा विवृण रूप (Oblique  
Form) दीजिए तथा उन रूपों की व्युत्पत्ति पर एक टिप्पणी लिखिए।

१३. हिन्दी तथा संस्कृत कलाओं की वारदा-रचना के मूल सिद्धांतों  
में क्या अंतर हो गया है ? संक्षेप में उत्तर दीजिए।

३४. हिन्दी सर्वनामों के रूप देकर उनकी व्युत्पत्ति पर प्रकाश डालिये। १६६

३५. हिन्दी क्रिया के कालों में संस्कृत कालों के कौन से रूप अवशेष रह गये हैं ? दोनो का सम्बन्ध स्थापित कीजिये। १७१

अथवा

हिन्दी क्रियाओं की व्युत्पत्ति बताइये।

३६. हिन्दी क्रिया की काल-रचना में कृदन्तो के महत्व का विवेचन कीजिये। १७७

३७. सग्रावाचक विशेषणों की व्युत्पत्ति स्पष्ट कीजिये। १८०

३८. हिन्दी भाषा के कुछ प्रमुख शब्दों की व्युत्पत्ति बताइये। १८४

३९. हिन्दी के उपमार्गों का संक्षिप्त परिचय दीजिये। १८८

४०. स्वराघात का भेदो सहित विवेचन करने हुए हिन्दी में उसकी विवक्षित स्थिति पर प्रकाश डालिए। १८९

४१. हिन्दी-भाषा की वैज्ञानिक परिभाषा दीजिये तथा उसके साहित्यिक रूप पर दृष्टि डालते हुए लखी बोली की उत्पत्ति और विकास पर एक संक्षेप लिखिये। १९१

४२. दक्खिनी भाषा के विकास और साहित्य का परिचय देने हुए लखी बोली से उसका सम्बन्ध बताइये। १९७

४३. देवनागरी के उद्गम और विकास पर एक संक्षेप लिखिए तथा उसके गुण और दोषों का विवेचन करने हुए कुछ सुधारात्मक सुझाव प्रस्तुत कीजिये। २०१

## परिशिष्ट

प्रश्न

पृष्ठ

४४. स्पष्ट कीजिए—

२०७

(क) भाषा की परिभाषा, (ख) भाषा ध्वनि सम्पत्ति है, (ग) भाषा उपयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर जाती है, (घ) भाषा-व्यंज, (ङ) भाषा की सामान्य प्रवृत्तियाँ (संकेत रूप में)।

४५. भाषा विज्ञान से अन्य विषयों का सम्बन्ध स्थापित कीजिए। २१०

४६. वाक्यों के प्रकार और वाक्य-भेदों में परिचय के कारण दीजिये। २१४



४७. स्पष्ट कीजिये—

(क) ध्वनिमन्त्र, (ख) भाषण-ध्वनि और ध्वनिमात्र का अन्तर  
(ग) क्लिक (Click) ध्वनियाँ, (घ) स्रोत ग्रह ।

४८. ध्वनि-नियमों के विरुद्ध मादृश्य का क्या अर्थ है ? उसके प्रभाव और विस्तार की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए ।

४९. 'यूरोप में सस्कृत की खोज ने तुलनात्मक भाषा-विज्ञान को नीव डाली ।' समीक्षा कीजिए ।

५०. मूल भारोपीय भाषाओं और संस्कृत में अपभ्रंश (Vowel gradation) की स्थिति पर तर्क उपस्थित कीजिए ।

अथवा

अपभ्रंश या स्वरक्रम (Ablaut) पर संस्कृत का सन्दर्भ देते हुए एक लेख लिखिये । क्या पाणिनि की गुण-वृद्धि और सम्प्रसारण भाषा-वेत्ताओं की दृष्टि से उचित है ?

५१. परिचयात्मक टिप्पणियाँ लिखिये—

बान्टू भाषा, द्रविड भाषा, मुंडा भाषाएँ, स्लाव भाषाएँ, पैशाची, अपभ्रंश, सहंदा, बिहारी भाषा, मध्य-पहाड़ी, उच्च हिन्दी, रेक्ता, सर विलियम जोन्स, यॉकोव ग्रिम, फ्रान्त्स बॉप, रुडल्फ राॅष, फ्रेडरिक्स मैक्समूलर, जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन, डा० सुनीतिकुमार चैटर्जी, शौरसेनी, शतम् तथा केन्टुम् समुदाय, हरियानी, छत्तीसगढ़ी, उर्दू, दक्खिनी, हिन्दी, हिन्दवी, हिन्दुस्तानी, ब्रज, अवधी, खड़ी बोली, यास्क, पाणिनि, कात्यायन ।

५२. हिन्दी के राष्ट्र-भाषा, राजभाषा, साहित्यिक भाषा तथा मातृ-भाषा के पहलुओं पर एक सक्षिप्त तुलनात्मक टिप्पणी लिखिये ।

५३. टिप्पणी लिखिए—

अभिधुति स्फुटवाक्य (Articulate speech), मूर्द्धन्गीकरण (cerebralisation), व्युत्पत्ति-शास्त्र के नियम, भाषा पर आधारित प्रागैतिहासिक खोज (Linguistic-Palaentology), वेदों में प्राकृत-तत्त्व, आदिम भारोपीय भाषा के स्वर, चिह्न-लिपि, ब्राह्मी लिपि, प्रत्यय, विभक्ति, नाद, स्वांस, तानत्र्य-नियम, अर्थ-विज्ञान, उच्चारण-अवयव, ध्वनि-ग्राम, स्वर-भक्ति तथा आगम ।

प्रश्न १—भाषा-विज्ञान की परिभाषा दीजिए। यह क्या है अथवा  
विज्ञान ?

भाषा-विज्ञान

भाषा-विज्ञान दो शब्दों में निमित्त है—भाषा और विज्ञान। भाषा मनुष्य के परस्पर विचार-विनिमय का साधन है। मानव अपने कतिपय ध्वनि-यंत्रों का प्रयोग कर उनमें कई प्रकार की ध्वनियों का उच्चारण कर उनके द्वारा अपने भावों तथा विचारों का प्रकाशन करता है। यह विचार-विनिमय और भाव-प्रकाशन प्रायः ध्वन्यात्मक रूप में होता है। विज्ञान का अर्थ शास्त्रीय ज्ञान तथा अध्ययन है। विज्ञान का कार्य किसी वस्तु का सम्बन्ध परीक्षण करना, सिद्धान्त निर्धारित करना तथा कारणों का पूर्ण समाधान करना है। भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करना भाषा-विज्ञान का प्रमुख कार्य है। भाषा-विज्ञान या भाषा-शास्त्र मानव-भाषा के समस्त रूपों, चाहे वे सम्य या असम्य जातियों के द्वारा प्रयुक्त होते हों, विकसित या अविकसित स्थिति में हों, उन सबका सम्यक् विवेचन करता है। एक भाषा-वैज्ञानिक किसी भाषा का अध्ययन उस की भाव-व्यञ्जना का साधन मानकर करता है। वह एक और प्रागैतिहासिक काल की भाषा का अध्ययन करता है; दूसरी ओर प्राचीन भाषाओं, देशी प्राकृत रूपों तथा आधुनिक प्रचलित भाषाओं एवं विभाषाओं का अध्ययन करता है।

भाषा-विज्ञान का अध्ययन करने की प्रायः तीन प्रणालियाँ पाई जाती हैं—

१. पर्यान्तात्मक या विश्वरणात्मक प्रणाली।

२. ऐतिहासिक प्रणाली।

३. मूलनात्मक प्रणाली।

विश्वरणात्मक प्रणाली में प्रायः जीवित भाषाओं का ही अध्ययन होता है, प्राचीन भाषा भी इस श्रेणी में आ सकती है। इस पद्धति के अन्तर्गत किसी

निर्दिष्ट बात में किसी भाषा में कौन-कौन सी ध्वनियों को (प्राकृतिक प्रकृतिवा कता थी, जिन प्रकार के शब्दों का प्रयोग होता पद-रचना तथा वाक्य-रचना की क्या परिभाषा थी, आदि का समीक्षण उसीमें किया जाता है। भाषा-विज्ञान के विज्ञान इन प्रश्नों के ध्वनि, रूप, वाक्य तथा मरदाना का ही अध्ययन करते हैं।

भाषा विज्ञान के अध्ययन को दूसरी रीति ऐतिहासिक है। ऐतिहासिक अध्ययन करते समय हम विवरणात्मक प्रणाली की स्वीकृति नहीं कर सकते क्योंकि ऐतिहासिक भाषा विज्ञान एक प्रकार भाषा के विभिन्न कालों का विवरणात्मक अध्ययन का परित्याग है। मुगल भाषा में परिवर्तन या विचार होते रहते हैं। इन विचार के क्या दशाएँ क्या हैं? परिस्थितियों के भाषा परिवर्तन में योग क्या है? ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान इन सभी प्रश्नों का समाधान उपस्थित करता है। इसमें के पूरे जीवन, उसके इतिहास और विकास पर ध्वनि, रूप आदि की विचार किया जाता है।

तुलनात्मक प्रणाली भाषा-अध्ययन का तीसरा मार्ग है। यह अध्ययन त्वपूर्ण है। इसके कारण भाषा-विज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक गया है। इस प्रणाली में किसी भाषा के ऐतिहासिक तथा वर्णनात्मक दोनों तथ्यों के अध्ययन को प्रस्तुत करते हुए सभी देशों एवं सभी वर्गों की भाषाओं का परस्पर तुलनात्मक अध्ययन उपस्थित किया जाता है। उपर्युक्त दोनों तथ्यों का समाहार तथा समन्वय इस तुलनात्मक पद्धति की विशेषता है। ऐतिहासिक या पद-रचना की दृष्टि से परस्पर सम्बन्धित दो या अधिक भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। यही नहीं, विभिन्न प्रकृति की भाषाओं की तुलना भी इसके अन्तर्गत की जा सकती है। परन्तु अधिकांश तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग एक ही परिवार या वंश से सम्बद्ध भाषाओं की ध्वनियों, पद-रचना, शब्द-कोष तथा वाक्य रचना के साम्य और वैषम्य के अध्ययन के लिए किया जाता है। यह एक ही भाषा के परवर्ती रूपों के साथ तुलनात्मक दृष्टि से किया गया हो या अनेक भाषाओं के साथ। संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश, ब्रजभाषा, भोजपुरी, खड़ी बोली का तुलनात्मक अध्ययन एक कोटि का होगा, संस्कृत, ग्रीक तथा लैटिन का दूसरी ओणी का। ऐतिहासिक क्रम का ध्यान में

हुये एक साथ अनेक भाषाओं की विकसित दशा का भी तुलनात्मक परिक्रिया जाता है ।

भाषा-विज्ञान के अध्ययन के दो रूप हैं—एक तो भाषाओं का वर्णनात्मक, वास्तविक या ऐतिहासिक अध्ययन और दूसरे अध्ययन के आधार पर भाषा उत्पत्ति, उसकी प्रारम्भिक अवस्था, उसके विकास तथा गठन के सम्बन्ध में विज्ञानियों का अध्ययन और निर्धारण । ये दोनों रूप एक दूसरे के सहोद्भूत हैं ।

रभाषा

डा० इयामसुन्दरदास — भाषा-विज्ञान भाषा की उत्पत्ति, उसकी बनावट और उसके विकास की व्याख्या करता है ।' — भाषा-रहस्य

'सब पूछा जाय तो बिना तुलना के अध्ययन वैज्ञानिक हो ही नहीं सकता, जो तुलनात्मक भाषा-विज्ञान की ही भाषा-विज्ञान कहते हैं ।'

—भाषा-विज्ञान

डा० भोलानाथ तिवारी — 'भाषा-विज्ञान वह विज्ञान है जिसमें भाषा—लिपि, वर्ण और सामान्य वा वर्णनात्मक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक दृष्टि अध्ययन और तद्विषयक विज्ञानों का निर्धारण किया गया हो ।'

डा० शुभे — 'जिसी विविष्ट परिवार के तुलनात्मक भाषा विज्ञान का ध्येय परिवार की भाषाओं की पारस्परिक समानताओं को ज्ञान करना तथा उन को व्याख्या करना है ।'

भाषा-विज्ञान विज्ञान है या कला

जैसा कि भाषा-विज्ञान नाम से विदित होता है कि यह भाषा का विज्ञान है, कोई व्यक्ति सहज ही अनुमान कर सकता है कि यह कब तक ही विज्ञान रूप का विज्ञान है । परन्तु विज्ञान में विशेष ज्ञान के अनिवार्य कुछ अन्य विशेषण भी हैं । समुचित रूप से विज्ञान का कार्य किसी वस्तु का समग्र परीक्षण करना और उसी का सही समझना तथा तुलना तथा प्रयोग के द्वारा निष्कर्ष निश्चिन करना है । ये नियम तथा निष्कर्ष सावधानीपूर्वक और सावधानीपूर्वक होते हैं । उनमें बिना किसी प्रयोग के लिए खोजावट भी स्थान नहीं है । 'हवा कम है' जो हमारी ही आवाज है, आदि-आदि नियम स्थापना तथा निश्चिन है । परन्तु



निर्दिष्ट बात में द्विगो भाषा में कौन-कौन थी ध्वनियाँ थी (या हैं), उनकी प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ क्या थी, किस प्रकार के कर्णों का प्रयोग होता था, उनकी पद-रचना तथा वाक्य-गठन की क्या परिपाटी थी, आदि का समीक्षात्मक परिचय उपस्थित किया जाता है। भाषा-विज्ञान के विद्वान् इन प्रश्नों में भाषा के ध्वनि, रूप, वाक्य तथा संपठना का ही अध्ययन करते हैं।

भाषा-विज्ञान के अध्ययन की दूसरी रीति ऐतिहासिक है। किसी भाषा का ऐतिहासिक अध्ययन करते समय हम विवरणात्मक प्रणाली की सर्वथा व्यवहारा नहीं कर सकते क्योंकि ऐतिहासिक भाषा विज्ञान एक प्रकार से किसी भाषा के विभिन्न कालों का विवरणात्मक अध्ययन का परिणाम है। वाक्यानुसार भाषा में परिवर्तन या विस्तार होते रहते हैं। इस विकार के कारण या दशाएँ क्या हैं? परिस्थितियों के भाषा परिवर्तन में योग क्या है? ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान इन सभी प्रश्नों का समाधान उपस्थित करता है। इसमें भाषा के पूरे जीवन, उसके इतिहास और विकास पर ध्वनि, रूप आदि की दृष्टि से विचार किया जाता है।

तुलनात्मक प्रणाली भाषा-अध्ययन का तीसरा मार्ग है। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके कारण भाषा-विज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक हो गया है। इस प्रणाली में किसी भाषा के ऐतिहासिक तथा वर्णनात्मक दोनों पद्धतियों के अध्ययन को प्रस्तुत करते हुए सभी देशों एवं सभी वर्गों की भाषाओं का परस्पर तुलनात्मक अध्ययन उपस्थित किया जाता है। उपर्युक्त दोनों पद्धतियों का समाहार तथा समन्वय इस तुलनात्मक पद्धति की विशेषता है। इसमें ऐतिहासिक या पद-रचना की दृष्टि से परस्पर सम्बन्धित दो या अधिक भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। यही नहीं, विभिन्न प्रकृति की भाषाओं की तुलना भी इसके अन्तर्गत की जा सकती है। परन्तु अधिकांश तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग एक ही परिवार या वंश से सम्बद्ध भाषाओं की ध्वनियों, पद-रचना, शब्द-कोष तथा वाक्य रचना के साम्य और वैषम्य के अध्ययन के लिए किया जाता है। यह एक ही भाषा के परवर्ती रूपों के साथ तुलनात्मक दृष्टि से किया गया हो या अनेक भाषाओं के साथ। संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश या व्रजभाषा, मगधी पड़ी बोली का तुलनात्मक अध्ययन एक कोटि का होगा, संस्कृत, ग्रीक तथा लैटिन का दूसरी श्रेणी का। ऐतिहासिक क्रम का ध्यान में



निर्दिष्ट काल में किसी भाषा में कौन-कौन सी ध्वनियाँ थी (या हैं), उनके प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ क्या थी, किस प्रकार के रूपों का प्रयोग होता था, उनके पद-रचना तथा वाक्य-गठन की क्या परिपाटी थी, आदि का समीक्षात्मक परिचय उपस्थित किया जाता है। भाषा-विज्ञान के विद्वान् इस प्रणाली में भाषा के ध्वनि, रूप, वाक्य तथा सघटना का ही अध्ययन करते हैं।

भाषा-विज्ञान के अध्ययन की दूसरी रीति ऐतिहासिक है। किसी भाषा का ऐतिहासिक अध्ययन करते समय हम विवरणात्मक प्रणाली की सर्वथा अवहेलना नहीं कर सकते क्योंकि ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान एक प्रकार से किसी भाषा के विभिन्न कालों का विवरणात्मक अध्ययन का परिणाम है। वाता-नुसार भाषा में परिवर्तन या विकार होते रहते हैं। इस विकार के कारण या दशाएँ क्या हैं? परिस्थितियों के भाषा परिवर्तन में योग क्या है? ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान इन सभी प्रश्नों का समाधान उपस्थित करता है। इसमें भाषा के पूरे जीवन, उसके इतिहास और विकास पर ध्वनि, रूप आदि की दृष्टि से विचार किया जाता है।

तुलनात्मक प्रणाली भाषा-अध्ययन का तीसरा मार्ग है। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके कारण भाषा-विज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक हो गया है। इस प्रणाली में किसी भाषा के ऐतिहासिक तथा वर्णनात्मक दोनों पद्धतियों के अध्ययन को प्रस्तुत करते हुए सभी देशों एवं सभी वर्गों की भाषाओं का परस्पर तुलनात्मक अध्ययन उपस्थित किया जाता है। उपर्युक्त दोनों पद्धतियों का समाहार तथा समन्वय इस तुलनात्मक पद्धति की विशेषता है। इसमें ऐतिहासिक या पद-रचना की दृष्टि से परस्पर सम्बन्धित दो या अधिक भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। यही नहीं, विभिन्न प्रकृति की भाषाओं की तुलना भी इसके अन्तर्गत की जा सकती है। परन्तु अधिकांश तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग एक ही परिवार या वंश से सम्बद्ध भाषाओं की ध्वनियों, पद-रचना, मन्द-कोष तथा वाक्य रचना के साम्य और वैषम्य के अध्ययन के लिए किया जाता है। यह एक ही भाषा के परवर्ती रूपों के साथ तुलनात्मक दृष्टि से किया गया हो या अनेक भाषाओं के साथ। मरुति, प्राकृत तथा अपभ्रंश या ब्रजभाषा, मगधी खड़ी बोली का तुलनात्मक अध्ययन एक कोटि का होगा, संस्कृत, ग्रीक तथा लैटिन का दूसरी र्थी का। ऐतिहासिक क्रम का ध्यान में





भाषा-विज्ञान विज्ञान बड़े जाने पर भी उसमें इस निश्चयात्मिक कृति का अभाव है। ये नियम विज्ञान के नियमों की भाँति सर्वत्र प्रकाश्य नहीं हैं। भाषा-विज्ञान के नियमों में एकाधिक अश्ववाद भी मिलते हैं। भाषा परिवर्तनशील है; अतः कभी-कभी नियम-विच्छेद नये शब्द और ध्वनियाँ भी देश-काल और वातावरण के प्रभाव से पा जायी है। परिणाम-स्वरूप विज्ञान की भाँति इसके नियम सर्वत्र, सार्वकालिक और शाश्वत नहीं हैं। 'मर्म' और 'कर्म' रूप की दृष्टि से समान है, किन्तु एक का विकास 'मर्म' के तथा दूसरे का 'कर्म' के रूप में हुआ है। यह विषय विकास शुद्ध वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता। ऐसी परिस्थिति में हमें विपत्ति और अनुमान पर आश्रित होना पड़ता है।

कला का एकमात्र लक्ष्य मनोरंजन तथा सौन्दर्य की मृष्टि करना है। सुन्दरता का उपासक अपनी कृति के लिये कला की ओर में आसरा लेता है। परन्तु भाषा-विज्ञान का प्रधान कार्य इससे सर्वथा भिन्न है। वह न तो मनोरंजन का साधन है और न सुन्दर कृति ही है। दूसरे कला व्यक्ति की कृति है तो भाषा समाज की सम्पत्ति। दोनों में कोई साम्य नहीं। भाषा-विज्ञान विज्ञान के अधिक निकट है। विज्ञान की भाँति भाषा-विज्ञान भी सिद्धांत अथवा नियम निर्धारण से सम्बन्ध रखता है। जिस प्रकार विज्ञान में किसी वस्तु का सम्यक् परीक्षण करके उसके सम्बन्ध में नियम निर्धारित किये जाते हैं उसी प्रकार भाषा-विज्ञान में भी भाषा के उत्पत्ति, रचना, विकास आदि सभी तत्वों के विश्लेषण से सामान्य नियम निश्चित कर लिये जाते हैं। भाषा की सम्यक् व्याख्या प्रस्तुत करना ही भाषा-विज्ञान का कार्य है।

इस प्रकार भाषा-विज्ञान भौतिक शास्त्र, गणित, रसायन शास्त्र की भाँति अपवाद-रहित तथा विकल्प-रहित ज्ञान न होते हुए भी कला नहीं कहा जा सकता है, अपितु, विज्ञान के साग्निक्य के कारण इसे विज्ञान कहना ही उचित है।

प्रश्न २—भाषा-विज्ञान और व्याकरण के सम्बन्ध की सम्यक् सीमा का कीजिए। भाषा-विज्ञान से व्याकरण और साहित्य के अध्ययन और अध्यापन में कहाँ तक सहायता मिलती है, स्पष्ट कीजिए। (दि० वि० १६५१)



करता है। भाषा के जीवित तथा प्रचलित रूप में भाषा-विज्ञान का सम्बन्ध है। घट भाषा-विज्ञान का जोन व्यवस्थित व्याकरण और उच्च विकसित या सविनियमित, प्राचीन या प्रवाचीन भाषा का प्रत्येक उच्च समान मूल्य रखता है। भाषा-विज्ञान का कार्य सामान्य रूप से भाषाप्रदेशों तथा विशेषण करना है। 'प्रत्येक भाषा विकसित होती है' इस विचार पर भाषा-विज्ञान विश्वास करता है। इसके ठीक विपरीत व्याकरण पुरानी पद्धति को अपनाता है। विद्वान् मईय व्याकरण के प्राचीन सिद्ध हों ही साथ ही और सिद्ध मानते हैं, नव-निर्मित उच्च उन्हें लटको है और वे 'प्रपञ्च' उपाधि से विभूषित करते हैं। संस्कृत-नव-विकसित भाषा में अधिकतर संस्कृत के तद्भव शब्दों का प्रयोग किया गया था पुरातनवादी व्याकरणों ने ऐसी भाषा को प्राकृत भाषा अर्थात् जन-माधारण को न.पा नाम दिया। क्योंकि उसमें 'धर्म' का 'धम्म' और 'कर्म' का 'कम्म' नवीन शब्दों का प्रयोग होने लगा था। प्रायेण पतकर प्राकृत के साहित्य-रस पर मावी हो जाने पर एक नव विकसित भाषा अस्तित्व में आई। उसे भी इन प्राचीनवादी व्याकरणों ने प्रपञ्च भाषा अर्थात् बिगड़ी हुई भाषा नाम दिया। प्रायेण प्राकृत और प्रपञ्च के रूपों को भी साथ मानना पड़ा। आज भाषा-विज्ञान के अन्तर्गत, ध्वनि-विचार में हिन्दी के अधिकतर प्रकारात शब्द व्यञ्जनात् माने जाने लगे हैं, क्योंकि आजकल हिन्दी-भाषा-भाषियों का उच्चारण 'राम' न होकर 'राम्' है। यदि यह परिवर्तन भाषा में कर दिया जाय तो व्याकरण प्रोत्थित हो उठेगा और संभवतः इसका तिरस्कार भी हो। चाहे अन्त में यह तथ्य उन्हें स्वीकार करना पड़े।

(३) व्याकरण भाषा-विज्ञान के पद-चिह्नों का अनुगमन करता है। भाषा के नये विकसित रूपों का ज्ञान भाषा-विज्ञान कराता है और कालान्तर में व्याकरण उसको सिद्ध करता है। व्याकरण भाषा की शुद्धि-अशुद्धि पर विचार करता है और भाषा-विज्ञान सामान्य रूप से उसका तर्क-सम्मत अध्ययन कर सिद्धांत निरूपण करता है। 'भाषा का वर्तमान रूप क्या है? यह व्याकरण बतलाता है, उसका भाव क्या है? साहित्यिक सिद्धांत है, पर भाषा-विज्ञान एक पक्ष प्रायेण बढ़कर भाव के साधन की मीमांसा करता है।'













करता है। भाषा के जीवित तथा प्रयुजित रूप में भाषा-विज्ञान का मनो-सम्बन्ध है। अतः भाषा-विज्ञान का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक और उदार है। विकसित या अविकसित, प्राचीन या अर्थाचीन भाषा का प्रत्येक शब्द भ्रान्त समान महत्व रखता है। भाषा-विज्ञान का कार्य सामान्य रूप से भाषाओं के दिग्दर्शन तथा विवेचन करना है। 'प्रत्येक भाषा विकसित होती है' इस सिद्धांत पर भाषा-विज्ञान विश्वास करता है। इसके ठीक विपरीत व्याकरण पुरातनवादी पद्धति को प्रपनाता है। विद्वान् नवीन व्याकरण के प्राचीन सिद्ध रूपों को ही साधु और सिष्ट मानते हैं, नव-निमित्त शब्द उन्हें खटखोते हैं और वे इन्हें 'अपभ्रंश' उपाधि से विभूषित करते हैं। संस्कृतेतर नव-विकसित भाषा जिस में अधिकतर संस्कृत के लक्ष्मण शब्दों का प्रयोग किया गया था पुरातनवादियों वैयाकरणों ने ऐसी भाषा को प्राकृत भाषा अर्थात् जन-साधारण की भाषा का नाम दिया। क्योंकि उसमें 'धर्म' का 'धम्म' और 'कर्म' का 'कम्म' नवीन शब्द रूपों का प्रयोग होने लगा था। प्राये चलकर प्राकृत के साहित्य-युग पर घासीन हो जाने पर एक नव विकसित भाषा अस्तित्व में आई। उसे भी इन प्राचीनवादी वैयाकरणों ने अपभ्रंश भाषा अर्थात् बिगड़ी हुई भाषा नाम दिया। प्राकृत और अपभ्रंश के रूपों को भी साधु मानना पड़ा। आज भाषा-विज्ञान के अन्तर्गत, ध्वनि-विचार में हिन्दी के अधिकतर प्रकारों शब्द व्यंजनात् माने जाने लगे हैं, क्योंकि आजकल हिन्दी-भाषा-भाषियों का उच्चारण 'राम' न होकर 'राम्' है। यदि यह परिवर्तन भाषा में कर दिया जाय तो वैयाकरण कोधित हो उठेंगे और सम्भवतः इसका तिरस्कार भी हो। चाहे अन्त में यह तथ्य उन्हें स्वीकार करना पड़े।

(३) व्याकरण भाषा-विज्ञान के पद-चिह्नो का अनुगमन करता है। भाषा के नये विकसित रूपों का ज्ञान भाषा-विज्ञान कराता है और कालान्तर में व्याकरण उसको सिद्ध करता है। व्याकरण भाषा की शुद्धि-अशुद्धि पर विचार करता है और भाषा-विज्ञान सामान्य रूप से उसका तर्क-सम्मत अध्ययन कर सिद्धांत निरूपण करता है। 'भाषा का वर्तमान रूप क्या है? यह वैयाकरण बतलाता है, उसका भाव क्या है' यह सिखाता है, पर भाषा-वैज्ञानिक सा करता है।'



करता है। भाषा के जीवित तथा प्रचलित रूप से भाषा-विज्ञान का घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः भाषा-विज्ञान का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक और उदार है विकसित या अविकसित, प्राचीन या भ्रष्टाचीन भाषा का प्रत्येक शब्द अपने समान महत्व रखता है। भाषा-विज्ञान का कार्य सामान्य रूप से भाषाओं का दिग्दर्शन तथा विवेचन करना है। 'प्रत्येक भाषा विकसित होती है' इस सिद्धांत पर भाषा-विज्ञान विश्वास करता है। इसके ठीक विपरीत व्याकरण पुरातनवादी पद्धति को अपनाता है। विद्वान् सर्वत्र व्याकरण के प्राचीन सिद्ध रूपों को ही साधु और शिष्ट मानते हैं, नव-निर्मित शब्द उन्हें खटकते हैं और वे इन्हें 'अपभ्रष्ट' उपाधि से विभूषित करते हैं। सस्मृतोत्तर नव-विकसित भाषा जिस में अधिकतर सस्कृत के तद्भव शब्दों का प्रयोग किया गया था पुरातनवादी वैयाकरणों ने ऐसी भाषा को प्राकृत भाषा अर्थात् जन-साधारण की भाषा का नाम दिया। क्योंकि उसमें 'धर्म' का 'धम्म' और 'कर्म' का 'कम्म' नवीन शब्द रूपों का प्रयोग होने लगा था। आगे चलकर प्राकृत के साहित्य-रस पर घासीन हो जाने पर एक नव विकसित भाषा अस्तित्व में आई। उसे भी इन प्राचीनवादी वैयाकरणों ने अपभ्रंश भाषा अर्थात् बिगड़ी हुई भाषा नाम दिया। आगे प्राकृत और अपभ्रंश के रूपों को भी साधु मानना पड़ा। आज भाषा-विज्ञान के अन्तर्गत, ध्वनि-विचार में हिन्दी के अधिकतर अकारात् शब्द व्यजनात् माने जाने लगे हैं, क्योंकि आजकल हिन्दी-भाषा-भाषियों का उच्चारण 'राम' न होकर 'राम्' है। यदि यह परिवर्तन भाषा में कर दिया जाय तो वैयाकरण क्रोधित हो उठेंगे और सभवतः इसका तिरस्कार भी हो। चाहे अन्त में यह तथ्य उन्हें स्वीकार करना पड़े।

(३) व्याकरण भाषा-विज्ञान के पद-विन्दो का अनुगमन करता है। भाषा के नये विकसित रूपों का ज्ञान भाषा-विज्ञान कराता है और कालान्तर में व्याकरण उसको सिद्ध करता है। व्याकरण भाषा की शुद्धि-अशुद्धि पर विचार करता है और भाषा-विज्ञान सामान्य रूप से उसका तर्क-सम्मत अध्ययन कर सिद्धांत निरूपण करता है। 'भाषा का वर्तमान रूप क्या है? यह वैयाकरण बतलाता है, उसका भाव क्या है? साहित्यिक सिद्धांत है, पर भाषा-वैज्ञानिक एक पग आगे बढ़कर भाव के साधन की भीमामा करता है।'



करता है। भाषा के जीवन तथा प्रवर्धन में भाषा विज्ञान का परि-  
 गणना है। यह भाषा-विज्ञान का शेष सांख्यिक व्याकरण और उच्चारण  
 विनियम या ध्वनिविनियम, प्राचीन या सर्वाचीन भाषा का प्रादेशिक सम्बन्ध  
 समान मूल्य रखता है। भाषा-विज्ञान का कार्य सामान्य रूप से भाषाओं  
 विश्लेषण तथा विवेचन करना है। 'प्रादेशिक भाषा विकसित होती है' इस विचार  
 पर भाषा-विज्ञान विश्वास करता है। इसके ठीक विरोध में व्याकरण पुरातन  
 वादी पद्धति को अपनाता है। विज्ञान मूलक व्याकरण के प्राचीन विद्वानों  
 ही साधु और सिद्ध मानते हैं, नव-निर्मित शब्द उन्हें गटकते हैं और वे  
 'अपभ्रष्ट' उपाधि से विभूषित करते हैं। सत्यतः नव-विकसित भाषा में  
 अधिकतर ससृज के लक्ष्य शब्दों का प्रयोग किया गया था पुरातनवा  
 वैयकारणों ने ऐसी भाषा को प्राकृत भाषा अर्थात् जन-भाषाएँ की भाषा  
 नाम दिया। क्योंकि उसमें 'धर्म' का 'धम्म' और 'कर्म' का 'कम्म' नवीन शब्द  
 रूपों का प्रयोग होने लगा था। प्रागे चलकर प्राकृत के साहित्य-रस पर प्रसी  
 हो जाने पर एक नव विकसित भाषा अस्तित्व में आई। उसे भी इन प्राचीन  
 वादी वैयकारणों ने अपभ्रष्ट भाषा अर्थात् बिगड़ी हुई भाषा नाम दिया। प्रा  
 प्राकृत और अपभ्रष्ट के रूपों को भी साधु मानना पड़ा। आज भाषा-विज्ञान  
 के अन्तर्गत, ध्वनि-विचार में हिन्दी के अधिकतर अक्षरात्मक शब्द व्यञ्जनात्मक  
 जाने लगे हैं, क्योंकि आजकल हिन्दी-भाषा-भाषियों का उच्चारण 'राम'  
 होकर 'राम्' है। यदि यह परिवर्तन भाषा में कर दिया जाय तो वैयकारण  
 प्रोहित हो उठेंगे और संभवतः इसका तिरस्कार भी हो। चाहे अन्त में य  
 तथ्य उन्हें स्वीकार करना पड़े।

(३) व्याकरण भाषा-विज्ञान के पद-चिह्नो का अनुगमन करता है। भाषा  
 के नये विकसित रूपों का ज्ञान भाषा-विज्ञान कराता है और कालान्तर में  
 व्याकरण उसको सिद्ध करता है। व्याकरण भाषा की शुद्धि-अशुद्धि पर विचार  
 करता है और भाषा-विज्ञान सामान्य रूप से उसका तर्क-सम्मत अध्ययन का  
 सिद्धांत निरूपण करता है। 'भाषा का वर्तमान रूप क्या है? यह वैयकारण  
 बतलाता है, उसका भाव क्या है? साहित्यिक सिखाता है, पर भाषा-वैज्ञानिक  
 एक पक्ष प्रागे बढ़कर भाव के साधन की भीमासा करता है।'।



करता है। भाषा के जीवित तथा प्रचलित रूप से भाषा-विज्ञान का पता लगाना सम्बन्ध है। अतः भाषा-विज्ञान का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक और उदार विकसित या अविकसित, प्राचीन या अर्वाचीन भाषा का प्रत्येक शब्द समान महत्व रखता है। भाषा-विज्ञान का कार्य सामान्य रूप से भाषाओं की दिग्दर्शन तथा विवेचन करना है। 'प्रत्येक भाषा विकसित होती है' इस सिद्धांत पर भाषा-विज्ञान विश्वास करता है। इसके ठीक विपरीत व्याकरण पुरातनवादी पद्धति को अपनाता है। विज्ञान सर्वव्याकरण के प्राचीन सिद्ध रूपों ही साधु और सिद्ध मानते हैं, नव-निर्मित शब्द उन्हें सटको हैं और वे 'अपभ्रष्ट' उपाधि से विभूषित करते हैं। संस्कृतेतर नव-विकसित भाषा में अधिकतर संस्कृत के तद्भव शब्दों का प्रयोग किया गया था पुरातनवादी व्याकरणों ने ऐसी भाषा को प्राकृत भाषा अर्थात् जन-साधारण की भाषा नाम दिया। क्योंकि उसमें 'धर्म' का 'धम्म' और 'कर्म' का 'कम्म' नवीन शब्दों का प्रयोग होने लगा था। प्राये चलकर प्राकृत के साहित्य-रस पर भारी पड़े जाने पर एक नव विकसित भाषा अस्तित्व में आई। उसे भी इन प्राचीनवादी व्याकरणों ने अपभ्रंश भाषा अर्थात् बिगड़ी हुई भाषा नाम दिया। प्राकृत और अपभ्रंश के रूपों को भी साधु मानना पड़ा। आज भाषा-विज्ञान के अन्तर्गत ध्वनि-विचार में हिन्दी के अधिकतर अकारांत शब्द व्यजनांत माने जाने लगे हैं, क्योंकि आजकल हिन्दी-भाषा-भाषियों का उच्चारण 'राम' होकर 'राम्' है। यदि यह परिवर्तन भाषा में कर दिया जाय तो व्याकरण को धिक्कृत हो उठे और संभवतः इसका तिरस्कार भी हो। चाहे अन्त में यह तथ्य उन्हें स्वीकार करना पड़े।

(३) व्याकरण भाषा-विज्ञान के पद-चिन्हों का अनुगमन करता है। भाषा के नये विकसित रूपों का ज्ञान भाषा-विज्ञान कराता है और कालान्तर में व्याकरण उसको सिद्ध करता है। व्याकरण भाषा की शुद्धि-अशुद्धि पर विचार करता है और भाषा-विज्ञान सामान्य रूप से उसका सर्व-सम्मत अध्ययन कर सिद्धांत निरूपण करता है। 'भाषा का वर्तमान रूप क्या है? यह व्याकरण बताता है, उसका भाव क्या है? साहित्यिक सिखाता है, पर भाषा-वैज्ञानिक एक पक्ष भाषा बदकर भाव के साधन की मीमांसा करता है।'।





मिलती है। दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। जीवित भाषाओं के छोड़कर भाषा का अध्ययन करने के लिए भाषा-विज्ञान साधने लाता है। वह साहित्य का चिर-श्रेणी है। प्राचीन रूपों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए समस्त सामग्री साहित्य से उधार ली जाती है। साहित्य के अतिरिक्त विविध विषयों की रचना करता है। साहित्य के अतिरिक्त विषयों की खोज प्रायः असम्भव नहीं तो दुरुह अवश्य है। क्योंकि साहित्य के विविध रूपों का अक्षय भण्डार है।

भाषा-विज्ञान हिन्दी भाषा के ऐतिहासिक विकास और मूल जानने के लिए अग्रभ्रम, प्राकृत, संस्कृत तथा वैदिक साहित्य की ओर ले जाता है। यदि हमारे पास भाषा का कम-बढ़ साहित्य उपलब्ध न रहे तो भाषा-विज्ञान का कोई कार्य निष्पन्न न हो। यदि आज संस्कृत, अवेस्ता तथा पारिवारिक सम्बन्ध न जान पाता। साहित्य में प्रयुक्त भाषा के अनेक विभिन्न शब्दों और रूपों के परिवर्तन का ज्ञान होता है। इसी और विशाल साहित्य के अध्ययन के फलस्वरूप भाषा-विज्ञान का कार्य समृद्ध और सम्पन्न हो चुका है।

साहित्य और भाषा-विज्ञान का घट्टा सम्बन्ध है। साहित्य के अनेक भाषा-विज्ञान का महत्वपूर्ण योग है। भाषा-विज्ञान साहित्य के अनेक अर्थों एवं विविध प्रयोगों को स्पष्ट कर देता है। उच्चारण-सम्बन्धी समस्याओं पर तथा ध्वनियों पर भाषा-विज्ञान ने अग्रव प्रकाश डाला है। शब्दार्थ-परिवर्तन आदि के कारणों की खोज इसी वाङ्मय के आधार पर हो रही है। इसी प्रकार दोनों एक दूसरे के सहायक हैं। भाषा-विज्ञान तुलनात्मक प्रणाली ने व्युत्पत्ति-शास्त्र को अनुपम देन दी है जिसने साहित्य में अनेक शब्दों की व्युत्पत्ति सभव हो सकी है।

प्रश्न ३—भाषा-विज्ञान के प्रमुख धर्मों का परिचय दीजिए तथा उसकी उपयोगिता का विवेचन कीजिए। (वि० वि० १९५८, भा० वि० १९६२)

भाषा-विज्ञान में भाषा से सम्बन्ध सभी विषयों तथा समस्याओं पर विचार



मिलती है। दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। जीवित भाषाओं के जीवित रूपों छोड़कर भाषा का अध्ययन करने के लिए भाषा-विज्ञान साहित्य की सहायता लेता है। वह साहित्य का चिर-शुद्धी है। प्राचीन रूपों के ऐतिहासिक तुलनात्मक अध्ययन के लिए समस्त सामग्री साहित्य से उधार लेता है। तद्विषयक नियमों और सिद्धान्तों की रचना करता है। साहित्य में ही भाषा विविध तथा विकसित रूप रक्षित रहने हैं। साहित्य के अभाव में भाषा विषयक खोज प्रायः असम्भव नहीं तो दुर्लभ भवश्य है। क्योंकि साहित्य भाषा के विविध रूपों का यक्षय भण्डार है।

भाषा-विज्ञान हिन्दी भाषा के ऐतिहासिक विकास और मूल प्रकृति को जानने के लिए अरभ्रश, प्राकृत, संस्कृत तथा वैदिक साहित्य की ओर निहारता है। यदि हमारे पास भाषा का क्रम-बद्ध साहित्य उपलब्ध न रहे तो भाषा-विज्ञान का कोई कार्य निष्पन्न न हो। यदि आज संस्कृत, अवैस्ता तथा ग्रीक साहित्य का अस्तित्व न होता तो भाषा-विज्ञान इन भाषात्रय के पारस्परिक तथा पारिवारिक सम्बन्ध न जान पाता। साहित्य में प्रयुक्त भाषा के द्वारा हमें विभिन्न शब्दों और रूपों के परिवर्तन का ज्ञान होता है। इसी समुन्त और विशाल साहित्य के अध्ययन के फलस्वरूप भाषा-विज्ञान का कार्य अत्यन्त समृद्ध और सम्पन्न हो चुका है।

साहित्य और भाषा-विज्ञान का घट्टा सम्बन्ध है। साहित्य के अध्ययन में भाषा-विज्ञान का महत्वपूर्ण योग है। भाषा-विज्ञान साहित्य के क्लिष्ट अर्थों एवं विविध प्रयोगों को स्पष्ट कर देता है। उच्चारण-सम्बन्धी अनेक समस्याओं पर तथा ध्वनियों पर भाषा-विज्ञान ने अतुल्य प्रकाश डाला है। शब्दार्थ-परिवर्तन आदि के कारणों की खोज इसी वाङ्मय के आधार पर ही हो रही है। इसी प्रकार दोनों एक दूसरे के सहायक हैं। भाषा-विज्ञान की तुलनात्मक प्रणाली ने व्युत्पत्ति-शास्त्र को अनुपम देन दी है जिसमें साहित्य में प्रयुक्त शब्दों की व्युत्पत्ति मभव हो सकी है।

प्रश्न ३—भाषा-विज्ञान के प्रमुख अर्थों का परिचय दीजिए तथा उसकी उपयोगिता का विवेचन कीजिए। (वि० वि० १९५८, आ० वि० १९६२)

भाषा-विज्ञान में भाषा से सम्बद्ध सभी विषयों तथा समस्याओं पर विचार













मिलती है। दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। जीवित भाषाओं के जीवित रूप छोड़कर भाषा का अध्ययन करने के लिए भाषा-विज्ञान साहित्य की सहायिका है। वह साहित्य का चिर-श्रेणी है। प्राचीन रूपों के ऐतिहासिक तुलनात्मक अध्ययन के लिए समस्त सामग्री साहित्य में उपलब्ध है। तद्विषयक नियमों और निदानों की रचना करता है। साहित्य में ही भाषा विविध तथा विकसित रूप रक्षित रहती है। साहित्य के घनाय में विषमक खोज प्रायः सम्भव नहीं तो दुरुह अवसर है। क्योंकि साहित्य के विविध रूपों का प्रसार भण्डार है।

भाषा-विज्ञान हिन्दी भाषा के ऐतिहासिक विकास और मूल प्रकृति जानने के लिए अग्रभूत, प्राकृत, मस्कृत तथा वैदिक साहित्य की ओर निहता है। यदि हमारे पास भाषा का क्रम-बद्ध साहित्य उपलब्ध न रहे तो भाषा-विज्ञान का कोई कार्य निष्पन्न न हो। यदि धातु संस्कृत, अव्यय तथा साहित्य का अस्तित्व न होता तो भाषा-विज्ञान इन भाषाव्यय के पारस्परिक तथा पारिवारिक सम्बन्ध न जान पाता। साहित्य में प्रयुक्त भाषा के द्वारा हमें विभिन्न शब्दों और रूपों के परिवर्तन का ज्ञान होता है। इसी समृद्ध और विशाल साहित्य के अध्ययन के फलस्वरूप भाषा-विज्ञान का कार्य भद्र समृद्ध और सम्पन्न हो चुका है।

साहित्य और भाषा-विज्ञान का घट्ट सम्बन्ध है। साहित्य के अधः में भाषा-विज्ञान का महत्वपूर्ण योग है। भाषा-विज्ञान साहित्य के कि-स-सर्वो-एव विविध प्रयोगों को स्पष्ट कर देता है। उच्चारण-सम्बन्धी समस्याओं पर तथा ध्वनियों पर भाषा-विज्ञान ने भूपूर्व प्रकाश डाला। शब्दार्थ-परिवर्तन आदि के कारणों की खोज इसी आडमम के आधार पर ही रही है। इसी प्रकार दोनों एक दूसरे के सहायक हैं। भाषा-विज्ञान तुलनात्मक प्रणाली ने व्युत्पत्ति-शास्त्र को अनुपम देन दी है जिसमें साहित्य प्रयुक्त शब्दों की व्युत्पत्ति संभव हो सकी है।

प्रश्न ३—भाषा-विज्ञान के प्रमुख धर्मों का परिचय दीजिए तथा उस उपयोगिता का विवेचन कीजिए। (वि० वि० १९५८,  
भाषा-विज्ञान में भाषा से सम्बद्ध सभी विषय)



उत्तरा मनुचित परिणय प्राप्त किया जा सकता है। प्राचीन भाषा का विस्लेषण तथा अनुशीलन करते समय तद्नुशील सम्बन्ध के महत्त्वपूर्ण स्रोत प्राप्त हो जाते हैं। यह धर्मी एक नवजात शिशु के रूप में है, परन्तु इसके दशाध्य कार्यों का निरीक्षण कर हम भविष्य में इससे इन क्षेत्र में प्रमुख स्रोत के लिए अनेक आशाएं कर सकते हैं।

(५) लिपि (Script) — लिपि एक प्रकार से भाषा का परिधान है। मनुष्य-मात्र की विचाराभिव्यक्ति तथा भाव-व्यंजना को साकार करने में इसका बड़ा हाथ है। अतः इसका सम्बन्ध भाषा के लिखित रूप से है। भाषा-विज्ञान लिपि का वैज्ञानिक अध्ययन करता है और इसके उद्भव और विकास की समीक्षा भी करता है। भाषा-विज्ञान ध्वनि-विचार की सहायता से लिपि में संशोधन कर इसको अधिक वैज्ञानिक और उपयोगी बनाने के लिए प्रयत्नशील है।

### भाषा-विज्ञान की उपयोगिता

प्रत्येक वस्तु की अपनी उपयोगिता तथा महत्ता होती है। जो वस्तु जितनी ही उपयोगी होगी उससे मानव तथा समाज का उत्तना ही कल्याण होगा। मानव-जाति तथा संस्कृति की समृद्धि तथा कल्याण करना विज्ञान मात्र का उद्देश्य है। भाषा-विज्ञान का योग भी इस सम्बन्ध में उपेक्षणीय नहीं है। भाषा-विज्ञान के अध्ययन से हमें निम्नोक्त लाभ हैं—

(१) मानव विवेक प्रधान प्राणी है। भाषा तथा शब्द विषयक अनेक प्रश्न उसके मस्तिष्क में घूमते रहते हैं। उसका इस प्रकार का कौतूहल साहित्य तथा व्याकरण का अध्ययन करते समय अधिक बढ़ जाता है। भाषा-विज्ञान इन कौतूहल तथा जिज्ञासा को तृप्त करने की चेष्टा करता है और साथ ही भाषा-सम्बन्धी अनेक समस्याओं का समाधान उपस्थित करता है।

(२) भाषा-विज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त विशाल और विस्तृत है। वह किसी भाषा के बन्धन को स्वीकार नहीं करता; वरन् यह विश्व के किसी कोने की भाषा को अपने विराट् रूप में आत्मसात् कर लेता है। साथ ही इसका सम्बन्ध अनेक शास्त्रों तथा विज्ञानों से है। इतिहास, मनोविज्ञान, पुरुषत्व,





## ब्राह्मण-ग्रन्थ तथा प्रातिशाख्य

संहिताओं के पश्चात् ब्राह्मण-ग्रन्थों का काल माना जाता है। इन ग्रन्थों में यदा-कदा ध्वनि और अर्थ का उल्लेख किया गया है। धातुओं के अर्थ को नमकाने का यह प्रथम प्रयत्न है। वैदिक संहिताओं का पद-पाठ भाषा-विज्ञान के विकास में एक नवीन अध्याय जोड़ देता है। इसमें मन्धि, समास और स्वरावात के आधार पर संहिताओं को पद रूप में किया गया है। प्रत्येक संहिता का पद-पाठ पृथक् पृथक् ऋषि ने किया। साकृत्य ऋषि ऋग्वेदीय पद-पाठ के, गार्ग्य सामवेदीय के तथा माध्वदित यजुर्वेदीय के पद-पाठकार थे। वेदों की ध्वनि तथा उच्चारण की दृष्टि से परम्परागत परिपाटी को अक्षुण्ण बनाने के लिए वेदों की प्रतिशाखा का अध्ययन होने लगा। वेदों के शुद्ध उच्चारण और निमित्त ध्वनि की रक्षा के लिए विद्वानों ने प्रतिशाखानुसार जो सिद्धान्त प्रतिपादित किये उन्हें प्रातिशाख्य कहते हैं। यह उपलब्ध प्रातिशाख्य पाणिनी उत्तर काल की रचनाएँ हैं और प्राचीन प्रातिशाख्य पर आधारित हैं। के नाम, भाष्यात, उपसर्ग और निपात भेद, ध्वनियों का प्रौढ वर्ग, स्वराधात, मात्रा-काल और उच्चारण विषयक नियमों का अध्ययन निघण्टु और यास्क (८०० ई० पू०)

प्रातिशाख्यों के बाद निघण्टु की रचना हुई। यास्क ने निघण्टु की व्याख्या की है। इस समय एक ही निघण्टु प्राप्त है। के श्लिष्ट शब्दों की सूची मात्र है। यास्क ने उसके प्रत्येक शब्दों में उच्चारण देकर व्युत्पत्ति तथा अर्थ पर विचार किया है। के क्षेत्र में यह प्रथम प्रयास है। निरुक्तकार यास्क ने शारदाय प्रनेह भाषा-शास्त्रियों का उल्लेख किया है तथा उनके मनो को है। शब्दों की व्याख्या के साथ ही साथ भाषा की उत्पत्ति का स्पष्टीकरण किया है। इस परीक्षण से ज्ञात होता है कि विराम इस समय तक पर्याप्त हो चुका था।

मुनिप्रय—पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि

पाणिनि के पूर्व वैवाकरणों में आपिशलि, वाचस्पत्य और इन्द्र





## टीकाकार

अष्टाध्यायी की टीका वामन तथा जयादित्य (७०० ई०) लेखक-द्वय ने की। उसे 'काशिका' के नाम से अभिहित किया गया। जिनेन्द्रबुद्धि ने काशिका की टीका 'काशिना-न्याय' नाम से की। काशिका की टीकाओं में हरिदत्त की 'परमजरी' भी सुन्दर बन पड़ी है। महाभाष्य की टीकाओं में भर्तृहरि की 'वाक्य-पदीय' पुस्तक प्रमुख है जिसमें भाषा के दार्शनिक पक्ष पर विचार किया गया है।

## कौमुदीकार

टीकाकारों के उपरान्त कौमुदीकारों का समय आता है। अष्टाध्यायी की अधिक सुबोध बनाने के लिए टीका के पुरातन निर्माता का त्याग किया गया और नवीन-पद्धति का उपक्रम किया गया जो कौमुदी के नाम से विख्यात हुआ। इस नूतन शैली का सर्वप्रथम ग्रन्थ विमल सरस्वती की रचना 'रूपमाला' है। प्रत्याहार, सज्ञा, सधि, कृत, तद्धित और समास के व्यवस्थित क्रम का इस ग्रन्थ में सूत्रपात किया गया है। भट्टोजी दीक्षित कृत 'सिद्धान्त-कौमुदी' भाषा-विज्ञान में संस्कृत भाषा की सर्वाधिक महत्व की रचना है। इसकी लोकप्रियता ने अष्टाध्यायी को भी उपेक्षित बना दिया है। अन्य व्याकरणों में हेमचन्द्र 'शब्दानुशासन' तथा बोपदेव का मुग्धबोध भी उल्लेखनीय है।

सन्द की अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना शक्तियों का तात्त्विक और विषयक विवेचन ध्वन्यालोक, काव्यप्रकाश, रस-भगाधर आदि मिलता है।

## प्राकृत भाषाएँ

संस्कृत के परचातु प्राकृत, पाली तथा मगध भाषाओं की उनका अध्ययन कर व्याकरणों ने उन्हें भी व्याकरण के जटिल में दिया। पाली भाषा में कच्चायन, योगलान रचित व्याकरण सर चिन्हों पर लिखे गये। हेमचन्द्र के 'शब्दानुशासन' के आठवें अध्याय पर विचार किया गया है। बररवि का 'प्राकृत-प्रकाश' प्राकृत भाषा का व्याकरण है। इन भाषा-ग्रन्थों में प्राकृतों के तुलनात्मक अध्ययन को प्रमुख से माना गया है।

ସାଧୁନିତ ମୁଗ

भाषाविज्ञान का प्रभुत्व का मे सम्बन्ध पूर्व के मन्त्रों  
प्राप्त हुआ है। यद्यपि विज्ञान न भारतीय भाषाओं के सम्बन्ध में विवे  
कार दिया है। यद्यपि यद्यपि ने इन्द्र भाषाओं का तुलनात्मक साधन  
जान सीध में 'भारतीय धार्मिक भाषाओं का तुलनात्मक साधन' तथा  
द्वारा ने 'भारतीय धार्मिक भाषाओं का तुलनात्मक साधन' तथा  
एक वैज्ञानिक दृष्टि से डा० टर्नर का नेता को गथा डा० कोता  
द्वितीय भाषा साधन प्रमुख है। धर्म प्राचीन भाषाओं में डा० हार्  
भाषाओं पर प्रियमन ने द्वितीय भाषा पर, जून जार्ज ने मराठी भा  
महेश्वर कायें दिया है।

वर्तमान युग में भाषा-विज्ञान सम्बन्धी कार्य करने वालों में स्व० रा  
गोपाल भण्डारकर का नाम विरस्मरणीय है। उन्होंने सस्कृत व्यास  
परम्परा को रखते हुए योरोपीय विद्वानों के सिद्धान्तों का गहन अध्ययन  
किया है तथा प्राचीन मध्य तथा प्राधुनिक प्राय-भाषाओं की शोधपूर्ण मी  
है। डा० मुनीति कुमार चटर्जी तथा आर्येन्द्र शर्मा का नाम मूल भारो  
के सम्बन्ध में उल्लेखनीय है। चटर्जी का बंगाली भाषा के विकास का  
अनेक दृष्टियों से भाषा-विज्ञान की सम्पत्ति है। डा० धीरेन्द्र वर्मा  
बाबूराम सक्सेना (अबधी), मोहम्मद कादरी (हिन्दुस्तानी ध्वनि), उद  
तिवारी (भोजपुरी), सुभद्र झा (मैथिली), हरदेव (हिन्दी प्राय-भा  
प्रसिद्ध भाषा शास्त्री हैं।

प्रश्न ५—प्राधुनिक भाषा-विज्ञान के प्रारम्भिक इतिहास को कराइए।

उन्नीसवीं शताब्दी में भाषाविज्ञान के प्रारम्भ तथा विकास का नौ संक्षिप्त परिचय दीजिए ।

किन् प्रमुख यूरोपीय विद्वानों को दिया जाता है  
का नौ संक्षिप्त परिचय डीजिए ।  
... का भाषा-विषयक विवेचन इतना पुरातन नहीं जितना  
... पुरातन साहित्य के अध्ययन की व्यवस्था

का प्रभाव था। अतः भाषा तत्वों का विश्लेषण एवं वैज्ञानिक अध्ययन योरोप में भारत की अपेक्षा अधिक देर से हुआ। योरोप के भाषा-सम्बन्धी अध्ययन के दो भेद किये जा सकते हैं—प्राचीन और आधुनिक।

### प्राचीन

सर्वप्रथम ग्रीस के प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात ने शब्द और अर्थ के सम्बन्ध में विश्वास प्रकट किया। प्लेटो ने अपने गुरु सुकरात के भाषा के अक्षरों की अधिक पल्लवित किया। ग्रीक ध्वनियों के घोष और अघोष के रूप में वर्गीकरण का यह प्रथम प्रयास था। भाषा विचार के अन्तर का स्पष्टीकरण तथा व्युत्पत्ति का सकेत प्लेटो की कृतियों में मिलता है। नत्ववेत्ता अरस्तू ने भी प्लेटो के कार्य को आगे बढ़ाया। अरस्तू ने पदों का विभाजन कर सज्ञा तथा क्रिया के रूपों को अधिक स्पष्ट करने की चेष्टा की है। ये वर्णों की अविभाज्य ध्वनि मानते हैं। अरस्तू द्वारा दी गई स्वर की परिभाषा (स्वर वह है जिसकी ध्वनि बिना जिह्वा या ओष्ठ के उत्त्पन्न हो) कुछ अंशों में वैज्ञानिक कही जा सकती है।

### ग्रीक

ग्रीक भाषा के सर्वप्रथम वर्णानुकरण यूनान में। योरोप में स्वर और व्यंजनो की उचित परिभाषा सबसे पहले इन्होंने ही दी है। कर्ता, क्रिया, काल, लिंग, पुरुष और वचन के पारस्परिक सम्बन्ध की स्पष्ट अभिव्यक्ति इनके व्याकरण में प्राप्त होती है। इस कृति की उपादेयता अब भी कम नहीं है।

### लैटिन

ग्रीस और रोम के सम्पर्क के फलस्वरूप दोनों सभ्यताओं का मेल हुआ। ग्रीक पद्धति के आधार पर लैटिन का भी सम्पूर्ण अध्ययन होने लगा और उस भाषा के व्याकरण लिखने की प्रवृत्ति जागरूक हुई। पन्द्रहवीं शताब्दी में प्रसिद्ध विद्वान् मारेक्स बाल ने प्रथम प्रामाणिक लैटिन व्याकरण लिखा। बरो और प्रिस्त्रियन के व्याकरण भी उपयोगिता की दृष्टि से उत्तम हैं। इसी धर्म के प्रचार के द्वारा रोम तथा ग्रीस में मोल्ड टेस्टामेण्ट के अध्ययन के कारण ग्रीक, लैटिन और हिब्रू भाषाओं के तुलनात्मक विवेचन का धीरे-धीरे होने लगा।

[illegible][illegible]

674 (12 45 11-11)

[illegible]

व्याकरण की परम्परा की नींव डाली तथा कुछ ध्वनियों के नियम का सूत्रपात भी किया। उनका महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'भारतीय भाषा और ज्ञान' है। उन्होंने भाषाओं के विभाजन का प्रयास सर्वप्रथम किया। उनके बड़े भाई फ्रेडोल्फ स्तेगेन ने संस्कृत और समीचीय भाषाओं को सयोगात्मक और वियोगात्मक दो उपवर्गों में बांटा। हम्बोल्ट महोदय ने भाषा के ऐतिहासिक और तुलनात्मक दृष्टिकोण के ऊपर बल दिया। इस दृष्टिकोण के व्यापकत्व के कारण उनकी तुलनात्मक भाषा-विज्ञान का पिता कहा गया है। भाषा-विभाजन के समय चीनी भाषा के पारंगत पर विचार प्रकट किया।

इस युग के रैक्स, प्रिम और बॉय भाषा शास्त्री त्रय प्रमुख हैं। रैक्स ने नामों भाषा की उत्पत्ति तथा ग्रीनवुड की भाषा के विकास पर उपयोगी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। इनका मत था कि निम्न सामग्री के अभाव में किसी देश के इतिहास का परिचय भाषा-शास्त्र एवं साहित्य के आधार पर दिया जा सकता है। द्रविड भाषाओं की संस्कृत से निम्न अवस्थान रूप उन्होंने घनेक भाषाओं के व्याकरण की रचना की। १८१९ में याकोब प्रिम का देवभाषा व्याकरण जर्मन भाषा के ऊपर उच्च कोटि का अनूठा व्याकरण है। इसी में प्रिम नियम का वर्णन है। इसमें ध्वनि नियमों पर एक नया दृष्टि डाली है तथा वाक्य पर भी प्रशस्तनीय कार्य किया है। फ्रांसिस बॉय भाषा विज्ञान के प्रधान रचना में से एक है। 'धातु प्रविद्या' नामक इनकी पुस्तक में धीक-नीटिन अक्षरता, क्रमन तथा संस्कृत के विविध कसों की तुलनात्मक प्रयोगों की गई है। अनेक भाषाओं में तुलनात्मक व्याकरण की रचना के साथ ही संस्कृत का समीर अत्यन्त उन्होंने भाषाओं के मूल को खोजने का लिए किया। बॉय ने संस्कृत तथा धीक भाषाओं के व्यवसाय पर भी एक वैज्ञानिक अवलोकन किया है। बॉय का सबसे बड़ा सिद्धान्त वाक्य यह था कि भाषा-विज्ञान के नियम घनेकी एक निश्चित परिधि के भीतर ही रहते हैं।

इस समय तक भाषा विज्ञान का शास्त्र स्वल्प सामग्री आवे लगा था। बॉय व फ्रांसीसी की प्रकाशित सामग्री की विभिन्न विद्वानों के अध्ययन ने धीरे-धीरे समृद्ध बना दिया था। संस्कृत तथा प्राचीन भाषाओं के अध्ययन के अतिरिक्त भाषाओं के व्याकरण के विभिन्न पद्धतियों तथा प्रवृत्तियों की अवस्था पर भी





भारत में संस्कृत को देवभाषा तथा वेदों को अपौरुषेय समझा जाता है । इस प्रकार ईसाई प्राचीन विधान (Old Testament) को भाषा को, बौद्ध पाली को ईश्वर की प्रथम भाषा मानते हैं आधुनिक भाषाओं का उद्भव इन्हीं से हुआ है ।

खण्डन

(क) ईश्वर की दी हुई एक ही बोली होनी चाहिए थी । ईश्वर-प्रदत्त भाषा प्रारम्भ से विशिष्ट, सम्पन्न, परिमार्जित तथा तर्क-युक्त और शुद्ध होनी चाहिए थी । परन्तु हम देखते हैं कि भाषा का विकास धीरे-धीरे होता है ।

(ख) मिस्र के राजा सेमेटिक्स के परीक्षण से ज्ञात होता है कि एकान्त में रखे गए दो नवजात शिशुओं के मुख से फ्रीजियन शब्द 'वेकोस' निकला जिसका अर्थ है 'रोटी' । यह शब्द रोटी लाने वाले प्रहरी के मुख से अनजान में निकल आया । बादशाह अकबर के इसी प्रकार के प्रयोग से बच्चे गुँगे पाए गये । से यह निष्कर्ष निकला कि कोई भी शिशु भाषा लेकर नहीं आता ।

२. धातु-सिद्धान्त या डिंग-डॉंगवाद (Ding-Dong Theory)—मैक्स-मüller की यह भाषा-विषयक उद्भावना अपूर्व है । उसका मत था कि प्रत्येक वस्तु का टुकड़ा किसी वस्तु से टकराने पर एक विशेष कम्पनमय ध्वनि करता । वह ध्वनि अन्य ध्वनियों से भिन्न होती है । नृष्टि के प्रारम्भ में इसी तरह की एक विभावना शक्ति मनुष्य में थी । जब वह किसी वस्तु के सम्पर्क में आता उसके मुख से उस वस्तु के लिए एक ध्वनि प्रकट हो जाती थी । यह नैसर्गिक शक्ति थी जो भाषा का विकास होने पर लुप्त हो गई । विभिन्न वस्तुओं के सम्बन्ध में ये ध्वन्यात्मक अभिव्यक्तियाँ 'धातु' थी । प्रारम्भ में ध्वनियों की संख्या बहुत बड़ी थी । धीरे-धीरे ये ध्वनि-रूप लुप्त हो गए, केवल १००-१५० धातु शेष रहे । उन्हीं से भाषा की उत्पत्ति हुई । यह मत ध्वनि और अर्थ में एक रहस्यमय सम्बन्ध मानता था ।

खण्डन

मैक्समूलर की भाषा के उद्भव की यह धारणा किसी ठोस प्रमाण के अभाव में केवल कल्पना पर ही आधारित है । मनुष्य के पदर उद्भावना शक्ति का कोई आधार नहीं है । नाटकीय उदा सेमेटिक परिवारों में ही धातुओं की स्थिति है, अन्य भाषा-परिवारों में धातुओं की कोई वस्तु नहीं है । भाषा के लिए





## मीमांसा

(१) इन प्रकार के शब्दों का अनुशासन बहुत योज्य है, मनोरोगों के निवारण के लिए ही इनका निमित्त प्रभाव है।

(१) मनुष्य अपनी ध्येयात्मक शक्ति के होने हुए पशु-पक्षियों पर प्रबलत्व क्यों रहा ?

आधुनिक विद्वान् इस मत को सर्वथा त्याग्य नहीं मानते, क्योंकि भाषा में अनेक शब्द अनुकरण के द्वारा उत्पन्न होते हैं।

५. मनोभाषाभिन्न्यक्ततावाद—इसे मनोभाषाभिन्न्यक्तिवाद, मनःप्रेरणावाद तथा पूह-पूह-वाद (Pool-Pool) आदि समाप्रो से संबोधित किया जाता है। इस मत के अनुसार मानव से अन्य प्राणियों की भाँति भाषावेग के अवसर पर सुग, दुःख, आश्चर्य, घृणा आदि को हा, हाय, ओह, पूह, अह, धिक्, धत्, फाई, छि. आदि जैसे शब्द सहज ही निकल जाया करते हैं। ये ध्वनियाँ मनोवेगों को प्रकट करती हैं। धीरे-धीरे इन्हीं शब्दों से भाषा विकसित हुई।

## समीक्षा

ये शब्द न्यून तथा परिमित संख्या में हैं। इन वित्प्रेमादि-बोधक शब्दों का अस्तित्व वाक्य से पृथक् है तथा सभी भाषाओं में एक समान नहीं है। देश, काल और परिस्थिति के अनुसार ये भिन्न-भिन्न हैं, जैसे छि-छि. और फाई-फाई। आधुनिक शब्द स्वाभाविक न होकर सांकेतिक हैं।

६. ओ-हे-हो वाद—इसे धम-परिहरण-मूलकतावाद कहते हैं। इसके जन्म-दाता न्वाइर (Noire) का मत था कि पारोरिक धम का कार्य करते समय श्वास-प्रश्वास की तीव्र गति से स्वर-वर्धियों में एक प्रकार का कम्पन होने लगता है। उस समय कुछ ध्वनियाँ उच्चरित होकर मानव के धम-परिहार में सहायक होती हैं। प्रायः देखा जाता है कि घोड़ी वस्त्र घोड़े हुए 'हिंयो' या 'छियो' कहते हैं। मत्वाह धकान के लिए 'ओ हे-हो' कहते हैं। भाषा में इनकी संख्या अत्यल्प है, धर्म की दृष्टि से भी कोई महत्व नहीं है।

७. टा-टा-सिद्धांत तथा संगीतवाद (Sing-Song Theory)—टा-टा-वाद के अनुसार मानव काम करते समय मनमाने वाले उच्चारण अवयवों से



## मीमांसा

(१) इस प्रकार के शब्दों का अनुसृत गूढ़ा योड़ा है, प्रमरीसा की के बिनारे तो इनका निरान्त प्रभाव है।

(१) मनुष्य शरीर की ध्वन्यात्मक गति के होते हुए पशु-पक्षियों के समान क्यों रहा ?

प्राधुनिक विद्वान् इस मन को सर्वेश त्याग्य नहीं मानते, क्योंकि अनेक शब्द अनुकरण के द्वारा उत्पन्न होते हैं।

५. मनोभावाभिव्यञ्जकतावाद—इसे मनोभावाभिव्यक्तिवाद, मनवाद तथा पूह-पूह-वाद (Pooh-Pooh) आदि समाप्तो से संबोधित किया है। इस मन के अनुसार मानव से अन्य प्राणियों की भाँति भावावेग के पर गुन, दुःख, आश्चर्य, घृणा आदि को हा, हाय, ओह, पूह, महह, धत्, फाई, छिः आदि जैसे शब्द सहज ही निकल जाया करते हैं। ये मनोवेगों को प्रकट करती हैं। धीरे-धीरे इन्हीं शब्दों से भाषा विकसित हुई।

## समीक्षा

ये शब्द न्यून तथा परिमित सदृश में हैं। इन विस्मयादि-बोधक शब्दों की अस्तित्व वाक्य से पृथक् है तथा सभी भाषाओं में एक समान नहीं है। काल और परिस्थिति के अनुसार ये भिन्न-भिन्न हैं; जैसे छि-छिः और फाई। प्राधुनिक शब्द स्वाभाविक न होकर सांकेतिक हैं।

६. यो-हे-हो वाद—इसे श्रम-परिहरण-मूलकतावाद कहते हैं। इसके दाता न्वाइर (Noire) का मत था कि शारीरिक श्रम का कार्य करते श्वास-प्रश्वास की तीव्र गति से स्वर-तन्त्रियों में एक प्रकार का कम्पन सगता है। उस समय कुछ ध्वनियाँ उच्चरित होकर मानव के श्रम-परिहरण में सहायक होती है। प्रायः देखा जाता है कि धोबी वस्त्र धोते हुए 'हियो' 'छियो' कहते हैं। मल्लाह थकान के लिए 'यो हे-हो' कहते हैं। भाषा में इस सत्त्वा प्रत्यक्ष है, श्रम की दृष्टि से भी कोई महत्व नहीं है।

७. टा-टा-सिद्धान्त तथा संगीतवाद (Sing-Song Theory)—टा



व्यवहार-ध्वनि-संकेतों का जो व्यवहार होता है उसे भाषा कहते हैं।' भाषा और श्रोता दोनों के विचारों की अभिव्यक्ति का साधन है। दोनों इससे लाभान्वित होते हैं। भाषा समाज-साधक वस्तु है। समाज में प्रत्येक कार्य-संचालन के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। व्यवहार रूप में भाषा का अर्थ है—व्यापक अर्थ में भाव-प्रकाशन के साधन—इंगित या संकेत, स्वर-विकार, भाव-भंगिमा, चल और प्रभाव। भाषा ही कहा जायेगा परन्तु अधिकांश रूप में समाज द्वारा स्वीकृत व्यवहार ध्वनियों के लिए ही भाषा का प्रयोग किया जाता है। पशु-पक्षी आदि की भाषा-अभिव्यक्ति इसका विषय है।

भाषा अनेक अर्थों में व्यवहृत होती है। सामान्य बोली को भी भाषा कहते हैं, जैसे गूरे के पास भाषा नहीं है। इसका प्रयोग सामान्य भाषा के लिए भी होता है। संसार की अनेक भाषाओं का वर्गीकरण किया गया है। बोली के अर्थ में भी भाषा प्रयुक्त होती है; जैसे उसकी भाषा बुन्देली है। भाषा विज्ञान के पाठकों के लिए भाषा का महत्व कम नहीं है। संसार की समस्त भाषाओं को कुछ परिवारों में विभाजित कर दिया गया है। प्रत्येक परिवार में भाषा-वर्ग हैं। प्रत्येक वर्ग में कुछ सजातीय भाषाएँ हैं। प्रत्येक भाषा में अन्तर्गत अनेक विभाषाएँ हैं और तदनन्तर बोलियाँ। अतः भाषा, विभाषा और बोलियाँ ही भाषा-विज्ञान के अध्ययन का प्रमुख विषय हैं।

### बोली

सबसे प्रथम हम बोली को लेते हैं। बोलियों के एक प्रकार से समुचित विकास का नाम ही विभाषा तथा भाषा है। बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले भाषा के स्थानीय रूप को बोली कहते हैं। दूसरे रूप में इसे घर बोली भी कहते हैं क्योंकि यह घर या समाज में भावों के आदान-प्रदान के काम आती है। कुछ भी अर्थों में यह साहित्यिक नहीं कही जा सकती। इसका क्षेत्र छोटा होता है। डा० भोलानाथ तिवारी ने बोली की परिभाषा इस प्रकार दी है—“बोली किसी भाषा के एक ऐसे सीमित क्षेत्रीय रूप को कहते हैं, जो ध्वनि, रूप, वाक्य-गठन, अर्थ, शब्द-समूह तथा मुहावरों आदि की दृष्टि से उस भाषा के परिनिष्ठित तथा अन्य क्षेत्रीय रूपों से भिन्न होती है, किन्तु



लुप्त हो जाने के कारण महत्वपूर्ण समझी जाती हैं तो भाषा कहलाती हैं, यथा 'ब्राह्म' तथा 'मुण्डा' भाषा ।

२. साहित्य की श्रेष्ठता के कारण बोलियाँ महत्वपूर्ण हो जाती हैं । यथा बंगला ।

३. धार्मिक श्रेष्ठता से भी बोली का महत्व बढ़ जाता है । 'राम' और 'कृष्ण' की भक्ति के प्रभाव से अवधी और ब्रज को अधिक महत्व मिला तथा वे सदियों तक साहित्यिक भाषाएँ रही ।

४. विकसित समाज तथा बोलने वालों के कारण बोली महत्वपूर्ण बन जाती है । यथा अंग्रेजी आज एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है ।

५. राजनीति बोली के प्रमुख एवं महत्वपूर्ण होने का विशेष कारण है । राजनीति के केन्द्र की बोली विकसित तथा समृद्ध होकर भाषा का रूप ग्रहण कर लेती है । दिल्ली-मेरठ के समीप की खड़ी बोली ने अवधी, ब्रज जैसी विकसित भाषाओं को दबाकर राष्ट्र-भाषा का पद प्राप्त किया है । अन्य उदाहरण वेरिम की फ्रांसीसी तथा लन्दन की अंग्रेजी बोलियाँ हैं ।

भाषा-शास्त्री के लिए बोली का अनेकानेक अधिक महत्व है । साहित्यिक भाषा से भाषाजैता के लिए बोली का अधिक महत्व है । इसका स्पष्ट कारण यह है कि बोली की स्थिति स्वाभाविक तथा प्राकृतिक होती है और उमड़ा विज्ञान भी स्वाभाविक होता है । साहित्यिक भाषा मंदिर व्याकरण के नियम तथा उपनियमों में बंध जाती है और उसकी नैसर्गिक गति और स्वाभाविक विकास रुक जाता है । साहित्यिक भाषा बंधन में बंध कर घानी गति पक कर देती है । व्याकरण के दृढ़ बंधन के कारण भाषा का प्रसार रुक जाता है और इस प्रकार से भाषा की प्रगति रुक जाती है । परिचयन प्रगति का नियम है । प्रतीतिप्रतिबद्ध भाषा का बंधन होता है । मन्त्रावधि परिचयनहीन है अतः एक काल-विन्दु को परिचयनहीन मन्त्रावधि स्वाभाविक भाषा का भाषावधि रुक जाता है, अतः यह भाषा के नैसर्गिक रूप का अध्ययन कर भाषा की प्रगति, प्रगति तथा उनका विकास के सम्बन्ध में परिचयन ही आवश्यक भाषावधि प्रगति ही प्रगति कर सकता है ।



प्रश्न ८—भाषा परिवर्तनशील क्यों कही जाती है परिवर्तन के मुख्य-मुख्य कारणों की विवेचना उदाहरण सहित कीजिए ।

अथवा

भाषा के बाह्य तथा आन्तरिक रूपों में विकास और परिवर्तन के कारणों पर प्रकाश डालिए ।

संसार के वन-वन में प्रतिफल परिवर्तन हो रहा है । प्रत्येक वस्तु ही क्या मानव सस्कृति, सभ्यता तथा दर्शन में भी शनै-शनै परिवर्तन दृष्टिगत होता है । किसी वस्तु के परिवर्तन का हमें आभास मिल जाता है क्योंकि वह परिवर्तन अति दीर्घ होता है परन्तु कभी-कभी इसका परिवर्तन कालान्तर में दृष्टिगत होता है । किसी अवस्था पर हम उसके आभास का दर्शन कर पाते हैं । परिवर्तन के इस शाश्वत चक्र में भाषा भी अन्तर्हित है । अतएव भाषा में परिवर्तन ही उसका विकास है । परिवर्तनशीलता की प्रभविष्णुता अचूक और अमोघ है । यह विकास भाषा के समस्त रूपों में होता है । ध्वनि, पद, रूप, अर्थ और वाक्य भी भाषा के परिवर्तन-चक्र के अंग (Spokes) हैं । इनमें भी चक्र की गति के साथ परिवर्तन होता रहता है । भाषा परम्परागत वस्तु है । उसकी धारा प्रवाहिन तथा परिवर्तनशील होने पर भी स्थायी और नित्य है । वह अपने एक उद्गम स्थान से मृष्टि के आदिकाल से लेकर अब तक एकता के आधार पर अविच्छिन्न रूप से बह रही है । कालान्तर में यह भाषा अपने आदि स्वरूप से इतनी परिवर्तित हो गई है कि उसके प्राचीन और अर्वाचीन रूप में जमीन-आसमान का अन्तर दिखाई देता है ।, कहीं वैदिक सस्कृत और कहीं आज की हिन्दी ।

भाषा के इस परिवर्तन को ही विकास कहते हैं । व्याकरण इसे हास, अवर्धन तथा अपभ्रष्ट या पिसे हुए रूप के नाम से पुकारते हैं । परन्तु भाषा-विज्ञानवत्ता अपनी उदार दृष्टि के कारण विकास की सभा में विभूषित करने हैं । विनाश या अर्थ भाषा की उन्नत या परिष्कारित अवस्था नहीं है, परन्तु नवीनता या परिणाम मात्र है । जिस प्रकार मानव की अवस्थाओं की परिवर्तनता या निरान होता है उसी प्रकार भाषा की दशाओं का विकास होता है ।

उदाहरणार्थ उदात्ताप्य का 'भा' रह जाता मयनङि न होकर भाषा-शास्त्र के दृष्टि से विराम मान ली है।

भाषा में परिवर्तन अधिलक्षण परम्परा तथा जन-मनन की विभिन्नता के कारण होता है। भाषा की निष्ठा मानव तथा समाज के मनन से निवर्त है। समय-मान से यह परिवर्तन धीरे-धीरे होता है। एक भारतीय सिन्धु घाटी सभ्यता के मयन के कारण घर्ज की हो चोतेना। समय तथा सम्पर्क की यह भाषा साहित्यिक न होकर नव-साधारण की भाषा होती है जिसे 'बाली' की संज्ञा दी जाती है। प्राचीन नव-साधारण की भाषा में ही हिन्दी भाषा की उत्पत्ति हुई है। काल-भेद तथा अन्य सभ्यताओं के सम्पर्क से उसके मूल रूप में अन्तर अवश्य आ जाता है। यह एक वर्तमान तथ्य है। भाषा नित्य है तथा निरन्तर परिवर्तित होती रहती है।

**भाषा के विकास या परिवर्तन के कारण**

भाषा-शास्त्रज्ञों ने भाषा-सम्बन्धी इस विकास के कारणों के पोजने का प्रयास किया है। प्रवृत्ति तथा भाषा के आधार पर इन को दो वर्गों में विभक्त किया गया है। एक आन्त्यन्तर वर्ग तथा दूसरा बाह्य वर्ग।

**(क) आन्त्यन्तर वर्ग**

आन्त्यन्तर वर्ग के अन्तर्गत भाषा की स्वाभाविक गति तथा प्रयोक्ता की शारीरिक तथा मानसिक योग्यता से सम्बन्धित कारण आते हैं। वे कारण ये हैं :—

(१) प्रयोग से घिस जाना—अधिक प्रयोग के फलस्वरूप शब्दों में जो परिवर्तन होते हैं उन्हें 'स्वयभू' कहा जाता है। इसमें शब्द स्वयमेव तथा स्वय संचलित शक्ति के द्वारा विकसित होकर छोटे तथा सरल होते हैं। यह परिवर्तन स्वाभाविक होता है। यथा—द्वय का लू, क्नी (Know) का 'नो' 'मास्टर साहव' का 'मास्साव' आदि।

(२) बलाघात—जिस ध्वनि या अक्षर पर अधिक बल दिया जाता है वह अन्य ध्वनियों या अक्षरों को या तो निर्बल बना देता है या नष्ट कर देता है। इससे वर्ण सभी लुप्त या शक्तिहीन हो जाता है। इस कारण भी भाषा-विकसित

होती है। जैसे धाम्नान्तर में 'म्ब' पर बल है अतः धारम्भ का 'भ्र' समाप्त होकर 'भोतर' बन गया। बाजार में बजार तथा उपाध्याय से 'भा' इस प्रकार के रूप है। सस्कृत के भांडार तथा भंडार दो रूप बलापान के ही फलस्वरूप हैं।

(२) प्रयत्न लाघव या मुत्त-मुत्त—यह कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि भाषा में ६० प्रतिशत परिवर्तन इसी के आधार पर होते हैं। यह मानव की सहज प्रवृत्ति है कि वह छोटे में प्रयत्न से अधिक कार्य की गिड़ि करना चाहता है। इसी प्रयत्न लाघव (कम प्रयत्न) के प्रयोग के द्वारा व्यक्ति सरलता के लिए शब्द को लघु या सट्टा उच्चारित बना डालते हैं। इस तरह शब्दों का दीर्घाकार रूप सक्षिप्त और सरल रूप में परिवर्तित हो जाता है। उच्चारण की दृष्टि में शब्दों को सहज और मसुर बना देना ही 'मुत्त-मुत्त' है। इस प्रकार प्रायः व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ, सर्वनाम तथा अभिवादन के शब्द विकसित होकर लघु रूप धारण कर लेते हैं।

उदाहरणार्थ—धनात्र से नात्र एतादृश ने म्भारह (म्भर लोप), स्थान से धान (व्यञ्जन-लोप), स्टाउट से इम्फाउट, कृश से किम्बि (म्भरागम), अस्थि से हड्डी (व्यञ्जनागम), वाराणसी से बनारस (वर्ण-विपर्यय), शर्करा से शक्कर, बलवन्तर से कलटूर (समीकरण), काक से काग (विपर्यय), उष्ट्र से ऊँट, श्वास से साँस (प्रसारण अनुनासिकता) आदि।

(४) भाषातिरेक—यह भी प्रयत्न लाघव का एक प्रकार में भेद है। भाव के अधिकतम तथा स्नेहानिभूति में धर्म का रूप मिट्टा हो जाता है। इसमें प्रतिशय तथा सामान्य प्रेम का अधिक प्रयोग होता है, 'कृष्ण का कन्हैया' या 'कान्हा', 'गोव' का 'पद्मिनी', बाँह का 'बहिनी' आदि।

(५) मानसिक स्तर—भाषा, प्रयोगज्ञा के मानसिक स्तर में परिवर्तन होने से विचारों में परिवर्तन हो जाता है। विचारों की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से होती है। अतः भाषा में भी परिवर्तन हो जाता है। किसी व्यक्ति पर या देश की मानसिक अवस्था की उच्चता तथा निम्नता की वल्यता से भाषा में अन्तर हो जाता है। यथा—जर्मन विद्वान् जर्मनी की घरेलू से अधिक सोफिस्टिकेटड तथा मजि-शोल मानते हैं। बंगाली भाषा संयुक्त व्यञ्जनों की होनता के कारण मधुर तथा स्वीत्व से सुन्दर है। यह मानसिक अवस्था का

पाता है कि मदायी कठिन-मौ-कठिन श्रवण को भीमता में बदलट बीर जाता है।

(१) अनुकरण की प्रवृत्ति—भाषा एक दम्भरा तथा घोरत मन्त्रि है। अनुकरण के द्वारा अनुप्य भाषा को सीखा है। मध्यक् तथा गुड अनुकरण की विधि में भाषा में अनुनाम परिवर्तन होता है परन्तु अनुकरण की प्रवृत्ति में उच्चारण में घनत्व आ जाता है और जनसंख्या ध्वनि में परिवर्तन हो जाता है। यह प्रवृत्ति तथा अनुप्य अनुकरण की प्रवृत्ति का स्पष्ट दर्शन प्रायः माठ-शग पीड़ी के मननर होता है। इसमें एक भाषा विज्ञान में एक बड़े घन में विकसित या परिवर्तित हो जाती है।

अनुकरण की प्रवृत्ति निम्न कारणों में होती है—

(क) शारीरिक विभिन्नता—उच्चारण ध्वन तथा प्रास-प्रदानों के समान न होने के कारण से अनुकरण पूर्ण तथा गुड नहीं हो पाता और कुछ काल के अनन्तर भाषा में परिवर्तन हो जाता है। एक व्यक्ति का शरीर अन्य व्यक्ति के शरीर से गठन तथा सन्धान की दृष्टि से भिन्न होता है। तदनुसार मस्तिष्क के झुकाव तथा उच्चारण ध्वन की भिन्नता से 'ध्वनि-उच्चारण' में भी अन्तर आ जाता है। कुछ विद्वानों ने इसका उद्घन भी किया और कहा कि भारतीय सन्तान यूरोप में गुड प्रवेशी बोलते हैं। परन्तु भाषा के गठन आदि में कोई भेद नहीं पंदा होता। यह निश्चित है कि पीड़ी दर पीड़ी भाषा में भिन्नता प्रवदन आ जाती है।

(ख) ध्यान की कमी—यह ध्यान की कमी आत्मन्य तथा प्रसादवत् होती है। उचित ध्यान न देने से उच्चारण के अनुकरण में भिन्नता आ जाती है जो कालान्तर में भाषा-परिवर्तन का कारण बन जाती है।

(ग) शिक्षा तथा अज्ञान—इन दोनों के कारण से भी अनुकरण उचित रूप से पूर्ण नहीं हो पाता है। इसके अन्तर्गत देशी-विदेशी दोनों ही शब्द आ जाते हैं। उदाहरणार्थ—देव से देव (द > स), वृष्णा का तिसना (प > स) गुण का गुन, कर्ण का कान (ण > न), शिक्षा का सिच्छा, धविष का क्षत्री, (क्ष > छ), श्रुण का रित, श्रुषि का रिसि (श्रु का रि) आदि के साथ ही साथ अज्ञान तथा शिक्षा के कारण भी हो जाते हैं।

हरण इजन, रायबरेली (लाइब्रेरी), रपट (रिपोर्ट), (लाई) लाट, टेम (टाइम) सिगल (सिग्नल) आदि हैं।

(ख) बाह्यवर्ग

बाह्य वर्ग में बाहर से भाषा पर प्रभाव डालने वाले तत्व आने हैं।

(७) भौतिक वातावरण — एक परिवार में अनेक भाषाएँ और एक भाषा में अनेक बोलियाँ बनने का प्रभावशील कारण भौतिक तथा प्राकृतिक वातावरण है। शीत तथा उष्णता की स्थिति तथा आधिक्य से जीविका, स्वभाव, रहन-सहन, आचरण आदि पर प्रभाव पड़ता है और भाषा इन सभी वस्तुओं पर आधारित है। मैदान में घास-पत्तियाँ सरल होने के कारण तथा सम्पर्क के कारण भाषा में एक रूढ़ि रहती है जबकि पहाड़ी भागों में घास-पत्तियों की सुविधा तथा सहज सम्पर्क के अभाव में अनेक भाषा तथा बोलियों का विकास पृथक्-पृथक् रूप से होता है। घन पर्वतीय प्रदेश में थोड़ी दूर पर ही भाषा में अन्तर पड़ जाता है। उदाहरण के लिये भूमि में वास करने वालों की भाषा अधिक उन्नत तथा समृद्ध होगी और उनमें एक प्रकार की दास्यता, गम्भीरता, तथा व्यक्तता रहेगी, क्योंकि खाली समय में आधिक्य से लोगों को उन्नति करने का समय मिलेगा। जैसे भारत और यूनान में भाषा की गूढ़ता का दर्शन होता है। इसके विपरीत पर्वतीय या जंगली लोगों की भाषा में इस प्रकार का विकास नहीं होता। अतः भौतिक परिस्थितियाँ भी भाषा के विकास पर प्रभाव डालती हैं।

(८) सांस्कृतिक सम्मिलन तथा प्रभाव — संस्कृति समाज का प्राण है। अतः इसके प्रभाव से भी भाषा में परिवर्तन आ जाता है।

(क) किसी राष्ट्र की सांस्कृतिक समस्याओं से प्राचीन शब्दों का पुनरागमन हो जाता है। अतः परिणामतः शब्दों तथा अभिव्यक्ति-शैली में परिवर्तन हो जाता है। यह स्पष्ट है कि १९वीं शताब्दी से लेकर आधुनिक काल पर्यन्त हिन्दी भाषा में आर्य-संस्कृति के विकास के कारण अनेक संस्कृत शब्दों ने अपना स्थान बना लिया है।

(ख) अंग्रेजों के महान् व्यक्तित्व के प्रभाव से भाषा में परिवर्तन हो जाता है। कवि, लेखक, नेता तथा विद्वान् पुरुषों के द्वारा प्रयुक्त अनेक शब्द

भाषा को सी-सी धीरे वाक्य-मंडन पर अपना प्रभाव डालते हैं। गोष्ठाधीशुओं का यह के वाक्य में उसी भाषा को भाषा, प्रभाव तथा धर्म पर प्रसिद्ध प्रभाव डाला गया उनकी सी-सी का अनुष्ठान प्रत्येक पाठ्यपुस्तिका में दिना।

(ग) सांस्कृतिक सम्मिलन—कभी-कभी दो विभिन्न मनुष्यों का मेला यागार, पर्वोत्सव, राजनीतिक कार्यों में हो जाता है और उनका भाव उन लोगों पर पड़ता प्रभाव पड़ता है। भारत में ही साम्प्रदायिक, दलित-प्रार्थन, प्रार्थन-संघ, भारतीय-मुगलवाज तथा भारत-यूरोप के सांस्कृतिक सम्मिलन के हिन्दी भाषा की परिवर्तन रूप में परिवर्तित कर दिया है। उदाहरणार्थ हिन्दी में गंगा (साम्प्रदायिक) और (दलित), दान (दलित), कभी-कभी यागार, (युद्ध) साम्प्रदायिक के सन्दर्भ में है।

(६) सामाजिक ध्येयता—भाषा को परिवर्तित करने का एक प्रमुख कारण सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियाँ भी हैं। अंग्रेज़ि तथा मुँड के समय में भाषा में द्रुतगति से परिवर्तन होता है। सामाजिक जाति का परिवर्तन प्रत्येक देशवासी के विचार तथा संस्कृति में परिवर्तन ला देता है। भाषा गत रुझानें जुग होकर जुग नवीन संस्कृति-रचना का धीमे-धीमे करती हैं। समय की न्यूनता हमें भाषा के संक्षिप्त रूप की ओर आकृष्ट करती है घूनेरों, सीटों, नेपा आदि इसी प्रकार के रूप हैं। समाज तथा राष्ट्र की शान्ति के समय भाषा में स्थिरता जालिख तथा एक प्रकार की कठोरता या मर्यादा रहता है।

(१०) भाषा भावियों की उन्नति—राष्ट्र या देश के जन-जीवन के उन्नत स्तर के कारण भाषा में विकास हो जाता है। आधुनिक युग में वैज्ञानिक तथा भौतिक उन्नति के कारण से नई उन्नति के अनुरूप नई अभिव्यक्ति प्रजा की का विकास हो जाता है और प्राचीन शब्दों में भी नवीन अर्थ का समावेश हो जाता है। दूसरे मशीन, रहन-सहन के साधन तथा अन्य वस्तुओं के निर्माण के कारण नये शब्दों का निर्माण हो जाता है। भारतीय भाषाएँ भी वैज्ञानिक उन्नति के फलस्वरूप अधिक व्यापक और उन्नत हो रही हैं।

(११) सादृश्य—सादृश्य भाषा के आन्तरिक तथा बाह्य दोनों ही कारणों से रखा जा सकता है। भाषा परिवर्तन में सादृश्य का प्रभाव महत्व है। मानव

रवभाव सरलता का प्रेमी होता है। उसका यह रवभाव भाषा में भी बायें करता है। यह एक शब्द को किसी अन्य शब्द की सदृश्यता या रूप समानता के अनुसृत हो लेता है और इस प्रकार शब्द के मूल रूप में परिवर्तन हो जाता है। भाषा में यह परिवर्तन रूप प्रचलित हो जाता है। जैसे संस्कृत में 'दाश' के वचन पर 'एकदश' को 'एवादश' बना दिया है। संकीर्ण और संतानीय की अनुनासिकता पंथीय और पंतानीय के सादृश्य पर ही आधारित है। पाश्चात्य के सादृश्य पर पौराण्य तथा निगुण के सादृश्य पर मनुष्य हो गया है। सादृश्य स्मृति के आधार पर अनेक प्रकार से अपना बायें करता है।

उपयुक्त दृष्टि-दृष्टि के आधार पर ही भाषा का विकास होता है। विकास का अर्थ कुछ न होकर परिवर्तन मात्र ही है। भाषा-शास्त्री विकास का अर्थ भाषा की अर्थमय अवस्था अनुसृत करने है।

प्रश्न ६—दो भाषाओं के परस्पर सम्बन्ध को निर्धारण करने के प्रमुख तत्वों का उल्लेख करते हुए भाषा-विभाजन की विभिन्न पद्धतियों के गुण-दोषों का विवेचन कीजिये।

यह सवाल अन्वयानक भाषा तथा वार्तिका का सवाल है। भाषा में ही दूरी पर भाषा में परिवर्तन दृष्टिगत होता है। कहावत है 'दूरी पर पानी बदले, छाठ बीस पर बानी'। इस भाषा के अदूर परिवर्तन का कारण है भाषा-विभाजकों ने सवाल में जानी जाने वाली भाषाओं के सम्बन्ध में ही है तथा एक भाषाओं की कण्ठों का प्रयोग भी किया जा रहा है।

सवाल में भाषा-विभाजन की अनेक पद्धतियों की व्याख्या की जा रही है। प्रमुख रूप से प्रमुख आधार अर्थ विहित है—

(१) महावीर के आधार पर ही अनेक विद्वानों ने भाषा-विभाजन का विचार है—वेद एतियाई भाषाओं का विचार है—

(२) महावीर के आधार पर ही अनेक विद्वानों ने भाषा-विभाजन का विचार है—वेद एतियाई भाषाओं का विचार है—

वर्तिका विचार है—वेद











तत्त्व का योग रहता है। इसमें शब्दों का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। वे प्रत्यय, विभक्ति आदि से सगुन होकर वाक्य में प्रयुक्त होते हैं। मनार की अधिकांश भाषाएँ योगात्मक हैं, योग के प्रकृति के अनुसार इन भाषाओं के तीन विभाग किये जा सकते हैं—प्रक्षिप्त, क्षिप्त और अक्षिप्त।

### (क) प्रक्षिप्त-योगात्मक (Incorporating)

इस विभाग की भाषाओं में सम्बन्ध-तत्त्व तथा अर्थ-तत्त्व को अलग नहीं किया जा सकता। जैसे संस्कृत 'शृजु' से 'घातय' या 'शिनु' से शंसव में अर्थ-तत्त्व तथा सम्बन्ध-तत्त्व का अभेद योग हो गया है। इनको समान-प्रधान भाषाएँ भी कहते हैं क्योंकि इनमें अनेक अर्थ-तत्त्वों का समाज की प्रक्रिया से योग हो सकता है जैसे राज पुत्र गण विद्वयः। इनके भी दो भेद किये गए हैं—पूर्ण प्रक्षिप्त और आंशिक प्रक्षिप्त।

पूर्ण प्रक्षिप्त योगात्मक भाषाओं (Completely Incorporative) में सम्बन्ध-तत्त्व तथा अर्थ-तत्त्व का योग इतना पूर्ण रहता है कि शब्दों के संयोग से बना हुआ एक लम्बा-सा शब्द ही पूरा वाक्य बन जाता है। ग्रीनलैण्ड तथा दक्षिणी अमेरिका की चेरो की भाषा इसी प्रकार की है। चेरो की भाषा में—  
नातेन=लाओ, अमोखोल=नाव, निन=हम के संयोग से 'नाथोलिनिन' शब्द बन गया जिसका अर्थ 'हमारे पास नाव लाओ' है। इस प्रकार ग्रीनलैण्ड की भाषा में 'अउलिसरिअतोरसु अपोक्' (वह मछली मारने के लिए जल्दी जाता है) अउलिसर (मछली मारना), पेग्रतोर (किसी काम में लगना), पिन्नेमुअपोक् (वह शीघ्रता करता है) से मिलकर बना है।

आंशिक प्रक्षिप्त योगात्मक भाषाओं (Partly Incorporative) में सर्वनाम तथा क्रिया के मेल में क्रिया लुप्त होकर सर्वनाम का पूरक बन जाती है।

आस्क भाषा में—

दकार कि ओत=मैं इसे उनके पास ले जाता हूँ।

नकारमु=तू मुझे ले जाता है।

हकारत=मैं तुझे ले जाता हूँ।

भारतीय भाषाओं में भी उदाहरण दृष्टश्य है—

गुजराती में—‘मे कहा जे’ का ‘महु जे’ (मिने वह कहा) ।

(ख) श्लिष्ट-योगात्मक (Inflecting)

विभक्ति प्रधान, सम्कार प्रधान, विकर्षि प्रधान (Inflectional) भी इसी के नाम हैं । इन भाषाओं में सम्बन्ध-तन्त्र के योग में अर्थ तन्त्र कुछ विक्त हो जाता है फिर भी सम्बन्ध-तन्त्र की भलक अलग ही मान्यता पत्नी है । जैसे संस्कृत में वेद, नानि, इतिहास तथा भूगोल में ‘इह’ अन्त्यान्त वैदिक, वैदिक, ऐतिहासिक और भौगोलिक आदि । पदों के परिणामतः वेद आदि पद में भी विचार आ गया है । इसमें कारक, वचन आदि का सम्बन्ध विभक्ति द्वारा होता है । इस वर्ग की भाषाएँ समास में सर्वोन्नत हैं । मासी, हामा और भारोपीय परिवार इसी विभाग में आते हैं ।

श्लिष्ट भाषाओं के भी दो उप-विभाग हैं—(१) अन्तर्मुखी तथा (२) बहिर्मुखी ।

अन्तर्मुखी श्लिष्ट (Internal Inflectional) भाषाओं में जाड़े हुए भाग अर्थ-तन्त्र के बीच में घुलमिल कर रहते हैं । अरबी भाषा में सम्बन्ध-तन्त्र स्पष्ट होता है जो व्यञ्जनों के साथ घुलमिल कर रहता है । कृतब (निजना) में अन्तर्मुखी विभक्तियाँ लगाकर विनाब, बा'नब (निजने वाला) कृतब (बहुवचन विनाब), सबतब शब्द बनते हैं । इसी प्रकार ब'नस (माँस), ब'नस (गुन) बानस (माँस वाला), रि'न (गन्धु) दब'न (बड़ा भारवा) । यहाँ कृतब या कृतब में विभिन्न प्रकार के सम्बन्धों में अर्थ परिवर्तित हो गया है ।

आगे इस अन्तर्मुखी के दो ओर हैं

(१) संयोगात्मक (Synthetic) अरबी आदि सम्बन्ध भाषाओं का प्राचीन रूप संयोगात्मक था । इसमें जो अन्तर्मुखी श्लिष्ट भाषाएँ आती हैं, वे संयोगात्मक की आकरदारता ली हैं ।

(२) विश्लेषात्मक (Analytic) —अरबी संयोगात्मक भाषाओं के रूप विश्लेषात्मक हो रहा है । यह सब अन्तर्मुखी श्लिष्ट भाषाओं का ‘संयोगात्मक’ आकरदारता परत है । हिन्दी आदि में यह रूप स्पष्ट दिख रहा है ।

बहिर्मुखी श्लिष्ट (External Inflectional) —भाषाओं में विभक्ति-तन्त्र

तत्त्व का योग रहता है। इसमें शब्दों का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। वे प्रत्यय, विभक्ति आदि से संयुक्त होकर वाक्य में प्रयुक्त होते हैं। ससार की अधिकांश भाषाएँ योगात्मक हैं, योग के प्रकृति के अनुसार इन भाषाओं के तीन विभाग किये जा सकते हैं—प्रश्लिष्ट, श्लिष्ट और अश्लिष्ट।

### (क) प्रश्लिष्ट-योगात्मक (Incorporating)

इस विभाग की भाषाओं में सम्बन्ध-तत्त्व तथा अर्थ-तत्त्व को अलग नहीं किया जा सकता। जैसे संस्कृत 'शृजु' से 'आर्त्तव' या 'शिशु' से शंशव में अर्थ-तत्त्व तथा सम्बन्ध-तत्त्व का अभेद योग हो गया है। इनको समास-प्रधान भाषाएँ भी कहते हैं क्योंकि इनमें अनेक अर्थ-तत्त्वों का समाज की प्रक्रिया से योग हो सकता है जैसे राज पुत्र गण विजयः। इनके भी दो भेद किये गए हैं—पूर्ण प्रश्लिष्ट और आंशिक प्रश्लिष्ट।

पूर्ण प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषाओं (Completely Incorporative) में सम्बन्ध-तत्त्व तथा अर्थ-तत्त्व का योग इतना पूर्ण रहता है कि शब्दों के संयोग से बना हुआ एक लम्बा-सा शब्द ही पूरा वाक्य बन जाता है। ग्रीनलैण्ड तथा दक्षिणी अमेरिका की चेरो की भाषा इसी प्रकार की है। चेरो की भाषा में—  
नातेन=लाओ, अमोखोल=नाव, निन=हम के संयोग से 'आधोलिनिन' शब्द बन गया जिसका अर्थ 'हमारे पास नाव लाओ' है। इस प्रकार ग्रीनलैण्ड की भाषा में 'अउलिसरिअर्त्तोरमु अर्पोक्' (वह मछली मारने के लिए जल्दी जाता है) अउलिसर (मछली मारता), पैअर्त्तोर (किसी काम में लगता), पिन्नेमुअर्पोक् (वह शीघ्रता करता है) से मिलकर बना है।

आंशिक प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषाओं (Partly Incorporative) में सर्वनाम तथा क्रिया के मेल में क्रिया लुप्त होकर सर्वनाम का पूरक है।

बास्क भाषा में—

दकार कि ओत=मैं इसे उनके पास ले जाता हूँ।

नकारमु=तू मुझे ले जाता है।

हकारत=मैं तुम्हें ले जाता हूँ।









है। कभी-कभी स्वर-भेद से अर्थ विचरीत हो जाता है। अर्थ बोधना है परन्तु होमिनोन्ता का अर्थ खोलना है। गुण कोमलता, माधुर्य तथा काव्यात्मकता है। दक्षिणी ध्वनियाँ भी प्राप्त होती हैं।

सूडान परिवार की भाषाओं का प्रचलन भूमध्य-रेखे हेमेटिक परिवार के दक्षिण में है। कुछ भाषाएँ लिपिबद्ध साम्य रखती हैं। चीनी भाषा की भाँति ये अयोगात्मक तप परिवार की भाषाएँ ध्वन्यात्मक हैं तथा मुर तथा तान कें जाता है। विभक्तियों का नितान्त अभाव है।

हेमेटिक परिवार का विस्तार सम्पूर्ण अफ्रीकी प्रदेश में है। की कतिपय भाषाओं में धार्मिक साहित्य तथा प्राचीन शिलालेख हैं। इन परिवार की भाषाएँ स्निष्ट योगात्मक हैं। पद-रचना प्रत्ययों का प्रयोग होता है तथा स्वर-परिवर्तन से अर्थ बदल जा शक्ति का प्रयोग बल देने के लिए होता है, जैसे गोइ (काटना) से बार काटना) बनता है।

सेमेटिक परिवार की भाषाओं का प्रयोग मोरक्को से म्वेज होता है। इसका प्रधान क्षेत्र एशिया है। सेमेटिक और हेमेटिक में की दृष्टि से पर्याप्त साम्य है। इनमें धातु प्रायः तीन व्यंजनों की होत स्वर तथा प्रत्यय से शब्द-निर्माण होता है, जैसे कृत्-न् से हितिल केवल व्यक्तिवाचक सज्ञाओं में मिलता है। 'त' स्त्रीलिंग का चिह्न है य 'य' या 'ह' हो गया है जैसे मन्क (राजा) से मलकह (रानी)। इस व घरवी भाषा, धर्म, ज्योतिष, गणित, दर्शन, साहित्य और रमायन की दृष्टि पती है।

यूरोशिया खण्ड

यूरोशिया खण्ड समस्त भू-भाग में मानव-सभ्यता और संस्कृति का ग्योन त केन्द्र रहा है। यतः इन क्षेत्रों की साहित्य-निधि विरचित और मुख्यवर्षि रही है, यतः इस खण्ड की भाषाओं का अध्ययन और



समृद्धि की दृष्टि से प्रसिद्ध है।

४. एकाक्षर परिवार—चीनी भाषा की प्रमुखता के कारण इनको चीनी परिवार भी कहते हैं। इसका क्षेत्र चीन, स्याम, तिब्बत और बर्मा तक विस्तृत है। भारोपीय परिवार के पश्चात् भाषा-भाषियों की दृष्टि से सबसे बड़ा है। चीनी-भाषा में विश्व का सर्वप्रचीन साहित्य प्राप्त होता है। चीनी भाषा में इतनी क्षमता है कि सूक्ष्मातिसूक्ष्म विचारों को सरलता से अभिव्यक्ति कर सकती है। इस समुदाय की भाषाएँ अयोगात्मक तथा स्थान प्रधान हैं। प्रत्येक शब्द एकाक्षरात्मक तथा अव्यय के रूप में किसी भी स्थान पर प्रयोग किया जा सकता है। इन शब्दों की संख्या पाँच सौ से एक सहस्र के मध्य है। अधिक तथा अनेक अर्थ के प्रकट करने के लिए सुर या तान का उपयोग होता है। स्पष्टता के लिए द्वित्व का प्रयोग किया जाता है, जैसे ताम्रो-लू के एक साथ प्रयोग से अनेकाथों में सड़क का अर्थ ले लिया गया है। एक ही शब्द स्थान और आवश्यकतानुसार सज्ञा, क्रिया, विशेषण आदि बन जाता है। यहाँ अनुनासिका ध्वनियों का अधिकतर प्रयोग होता है। 'ङ' और 'ञ' के उच्चारण का बाहुल्य इस चीनी भाषा में मिलता है। भनानी और स्यामी पर चीनी वा साहित्य इन भाषाओं में सुरक्षित है।

५. द्रविड़ परिवार—यह वर्ग नर्मदा, गोदावरी के दक्षिण दिशा में समस्त भारत में फैला हुआ है। इनको तामिल परिवार भी कहते हैं। यह वाच्य और स्वर की दृष्टि से मूलात्-मूलात् परिवार के अनुरूप है। ये भाषाएँ अक्षिप्त यागात्मक हैं। प्रत्यय और समास का प्राधान्य है। इस परिवार की विशेषताएँ मुख्यतः ध्वनियाँ (द्वयं) हैं। इन भाषाओं में दो वचन और तीन लिंग होते हैं। अनुसक्त शब्द प्रायः एकवचन होते हैं। मलयम, तमिल, तामिल तथा तेलगू इस परिवार की विकसित भाषाएँ हैं। धार्य-भाषाओं में गोलूड पर आधारित (सेर छटीर, दरा-घाना) मान तथा मुख्य ध्वनियाँ तथा धनि, नीर, धीन, धटवी, कडिन, वीन आदि द्वितीय परिवार की देन है।

६. आग्नेय परिवार—इसको आस्ट्रिक परिवार भी कहा गया है। यह प्रान्त-जानर के डोनों, रनाम, बर्मा के खण्डों में, नीकोबार, आणाम की



इन परिवारों को प्रास्ट्रोनेशियन परिवार या मलय पालिनेशियन परिवार के नाम से अभिहित किया जाता है। प्रथम तीन परिवारों को मलय-पालिनेशियन परिवार भी कह दिया जाता है। इन परिवारों का एक स्रोत होने के कारण से बहुत भी बातों में समानता है। प्रायः इस खंड की भाषाएँ प्रसिद्ध योगात्मक हैं। प्रायः धातुएँ दो भक्षरों की होती हैं। स्वराघात बतात्मक है। पद-रचना के लिए आदि, मध्य तथा अन्त में शब्दों का योग कर दिया जाता है। ये सभी भाषाएँ शनैः-शनैः वियोगात्मक हो रही हैं।

### अमरीका खंड

इस खंड के अन्तर्गत उत्तरी तथा दक्षिणी अमरीका की भाषाएँ आती हैं। इस खंड की चार सौ भाषाओं को तीस वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। ये सभी भाषाएँ प्रसिद्ध योगात्मक हैं। वाक्य-रचना के लिए शब्दों की प्रधान ध्वनि या अक्षर के योग से वाक्य एक लम्बे शब्द रूप में बन जाता है। बेरो भाषा का नाधोलिनिन (हमारे पास नाव लाओ) इसका एक उदाहरण है। मय आदि कुछ भाषाओं में लिपि और साहित्य दोनों ही उपलब्ध होते हैं। इन भाषा-परिवारों का सम्यक् अध्ययन न होने के कारण इसका वैज्ञानिक विभाजन या वर्गीकरण सम्भव नहीं हो सका है। अध्ययन की सामग्री का भी इस खंड में अभी नितान्त अभाव है।

प्रश्न १२—भारोपीय (आर्य) मनुष्यों के मूल निवास-स्थान के सम्बन्ध में विभिन्न मतों पर प्रकाश डालिये। (प० वि० १९५३, दि० वि० १९५४)

भारोपीय भाषाओं का क्षेत्र सर्वाधिक उन्नत है और उसकी सम्यक्ता और संस्कृति विश्व भर में सर्वव्याप्त समझी जाती रही है। अगर विज्ञान के पर्यवेक्षण के आधार पर समस्त भारोपीय भाषाओं का मूल एक स्रोत है तो यह भी निश्चित है कि सर्वप्रथम भारोपीय लोगों का निवास-स्थान एक ही रहा होगा। यह संभव हो सकता है कि परिवार की वृद्धि होने से उनका विश्व के अन्य प्रदेशों की ओर निष्क्रमण हो गया हो। ये भारोपीय मनुष्य आर्य हो थे, इसमें अधिकांश विद्वान् एकमत हैं। कुछ विद्वान् इनको 'विरोग्' भी कहते हैं। साहित्य, ज्योतिष, पुरातन, मानव-विज्ञान, भाषा-विज्ञान, प्राचीन भूगोल आदि



मर्तों की कल्पना वेद-पुराण आदि प्राचीन साहित्य के आचार पर की गई है। भारतीय साहित्य में कहीं पर भी स्पष्ट रूप से आर्यों के बाहर से आने का उल्लेख नहीं मिलता है।

खण्डन—भारत में आर्यों की आदि भूमि होने की संभावना के विरुद्ध विद्वानों द्वारा निम्न प्रश्न उठाये गये हैं—(१) इस परिवार (भारोपीय) की अधिकांश भाषाएँ यूरोप और एशिया के सविस्थल पर या यूरोप में हैं, भारत के आसपास नहीं हैं। ऐसी स्थिति में भारत से निष्क्रमण की संभावना कम है। यह संभावना अधिक है कि उधर से एक शाखा आई और उसी के मोग भारत के उत्तरी भाग में बस गये, शेष लोग वही आसपास रह गये।

२. यदि भारत आर्यों का मूल-स्थान रहता तो सम्पूर्ण भारत में एक परिवार मिलता। उत्तर में ब्राहुई तथा दक्षिण में तामिल-तेलुगू का मिलना इसके विपक्ष में पड़ता है।

३. मोहन-जो-दड़ो का काल ऋग्वेद के पूर्व का है। यदि उसकी भाषा संस्कृत से मिलती-जुलती होती तो यह मान्य हो सकता था कि मूल-स्थान भारत में था। परन्तु वहाँ की भाषा द्रविड़ परिवार की मानी जाती है, अतः यह संभावना है कि वहाँ के प्रादिवासी द्रविड़ थे। आर्य पश्चिम या पश्चिमोत्तर से वहाँ आये।

४. तुलनात्मक भाषा-विज्ञान के आधार पर हिन्दी या तिबुतानिक भाषाएँ मूल भाषा से संस्कृत की भांति अधिक निकट हैं। अतः मूल-स्थान की सम्भावना हिन्दी के प्रागम्य है।

५. जातीय मानस-विज्ञान, जनवासु-विज्ञान, प्राचीन भूगोल तथा तुलनात्मक भाषा-शास्त्र के आधार पर न केवल यूरोपीय प्रतिष्ठित और नर देमाई जैसे भारतीय विद्वानों ने भी मूल-स्थान की कल्पना भारत के बाहर की है।

(घ) मूलस्थान की भारत से बाहर स्थिति—भारतीय विचारधारा के अनुसार मानस-वृष्टि का प्रारम्भ विशिष्ट (विश्व) स्थान में हुआ और उसी को आर्य लोगों का मूल-स्थान माना जाता है। कहा जाता है कि आर्यों के विस्तार का मोड़ यही स्थान है। वैदिक मन्त्रियों की जातीय कल्पना



‘सप्तसिन्धु’ का अनेक स्थानों पर उल्लेख मिलता है तथा प्रवाचीन ऋचाओं में पूर्व प्रदेशों की ओर संकेत भी मिलता है । इसी आधार पर कुछ मत भी दिये गये हैं—

(१) प्रविनाशचन्द्रदास ‘सप्तसिन्धु’ प्रदेश को घाघों का मूलस्थान मानते हैं ।

(२) सर देमाई ने घाघों का प्रादि-न्योत रूप में बालकन भील के समीप माना है । उनके कथनानुसार आज भी उक्त प्रदेश में ‘सप्तसिन्धु’ नामक स्थान है ।

(३) लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने अपनी पुस्तक ‘आर्कैटिक होम इन दी वेस्ट’ में इस विषय में एक गवेषणात्मक लेख प्रस्तुत किया है जिसमें घाघों के मूल निवास-स्थान को उन्होंने उत्तरी ध्रुव के निकट माना है । उनका कथन है कि हिम प्रदेश से घाघों का निष्क्रमण अन्तिम ‘हिमयुग’ के समय हुआ था । प्रमाण में उन्होंने ऋग्वेद की ऋचाओं तथा त्रीन के हिमयुग विद्वानों का सहारा लिया है ।

‘ऋग्वेदिक इण्डिया’ नामक पुस्तक में दाम ने त्रिविक के इस मत का खण्डन किया है और यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि घाघों का निवास-स्थान सरस्वती नदी का हिमाचल मध्यवर्ती उद्गम स्थान था । मनुस्मृति प्रादि प्राचीन ग्रन्थों में ‘ब्रह्मावर्त’ के महत्व और पृथ्वी का वर्णन इसी दृष्टि से किया गया है । कहा जाता है कि इस स्थान से घाघ लोग ईराक में बसे ।

(४) एडविन हाटन साहित्यायन का मत है कि यो-गा के घातघात एक अनसमूह था जिसके दो वर्ग हो गये । एक वर्ग जो एशियम को मुह गया, दूसरा वर्ग अरबों की भारत आया ।

(५) यूरोपीय विद्वानों में गहराई और बंजानिवन्ता की दृष्टि से इस प्रश्न में प्रथम नाम प्रायः मैगमूरर का दिया जाता है । इनके अनुसार मूल-घाघ वार्मर का प्यटो तथा उनका पाठ मध्य एशिया में सबब था ।

(६) डा० जैक्सन स्वच्छन्दियन आपाही की प्रवृत्ति आधार मानकर आर्यों का पूर्वस्थान यूरोप में माना । वह भी स्वच्छन्दियन का कथन है । यूरो-

जानिविज्ञान के अध्ययन के अनुसार इसी निष्कर्ष पर पहुँचा।

(७) इटैलियन मानव शास्त्रवेत्ता मेजो ने एशिया मूल स्थान का अनुमान लगाया है। हिन्दी भाषा के समिते पुष्टि होती है।

(८) डा० गाडन ने 'कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, में पियन पर्वत के आसपास भारतीय मूल-स्थान माना है।

(९) नेहरिंग (Nehring) ने मिट्टी के बर्तनों के अवशेषों की रूप को मूल-स्थान माना है। कुछ विद्वानों ने मानव-विज्ञान पर जर्मनी को मूल-स्थान माना है।

(१०) इतिहास-पूर्व पुरातत्व के आधार पर मच तथा कुछ पश्चिमी-बाल्टिक तट को मूल-स्थान कहा है।

(११) हर्ट ने आदि स्रोत पोलेण्ड में विश्वना नदी के तट पर इस मत के अनुसार उनके पश्चिमी तट पर केन्दुम् तथा पूर्वी तट पर भाषा-भाषी जन रहते थे। यह मत 'तोखारी' नाम केन्दुम् भाषा के प्रायः निराधार हो गया है।

(१२) स्त्राव भाषा-शास्त्री प्रो० थ्रेंडर ने दक्षिणी रूप में बोलने वाला मुद्गाने और कैस्पियन सागर के उत्तरी तट के निकटवर्ती प्रदेश को मूल माना है। कई विदेशी विद्वान इससे सहमत हैं।

(१३) डा० ब्रान्देन्स्टाइन ने (१९२६ में) तुलनात्मक और ऐतिहासिक अर्थ-विज्ञान के आधार पर मध्य एशिया वाले मत को पुनः स्थापित किया और यूराल पर्वत-माला के दक्षिण में स्थित प्रदेश को मूल-स्थान माना है।

(१४) उपर्युक्त मतों के प्रतिरिक्त नियुवानिया, बाल्टिक सागर के दक्षिण पूर्वी तट, मेसोपोटामिया या दक्खी-फरात सरिताओं के तट पर, प्रशिया, डेन्यूब नदी के किनारे, रूसी तुर्किस्तान आदि कई अन्य प्रदेशों के मूल स्थान होने के पक्ष में भी मत प्रकट किये गए हैं। गाडन, थ्रेंडर तथा ब्रान्देन्स्टाइन के मत अब तक अधिक प्रचलित और प्रसिद्ध माने गए हैं।

ब्रान्देन्स्टाइन (Brandenstein)







## रूप-परिवर्तन के कारण

(१) सरलता—जैसा कि ऊपर कहा गया है भाषा तथा शब्द के अन्वय रूपों से भस्तिष्क पर अनुचित बोझ पड़ता है। इन अपवादों को नियमानुसार ढालने के लिए मनुष्य को सरलता के लिए नये रूपों की रचना करनी पड़ती है। उदाहरण स्वरूप संस्कृत की अपेक्षा हिन्दी के क्रिया और कारक के रूपों में एकलानता या गई है। ध्वनि-परिवर्तन में प्रयत्न-न घब का जो स्थान है, रूप-परिवर्तन में सरलता का वही स्थान है। लोग उच्चारण तथा स्मरण की सरलता के लिए अन्य प्रचलित रूप के सादृश्य पर नवीन रूप का निर्माण कर लेते हैं। जैसे पञ्चाक्षर के वजन पर नये शब्द पौराणिक की रचना की गई। इस प्रकार के अनेक विकार रूपों में परिवर्तन कर देते हैं।

(२) अज्ञानता—नवीन रूप-रचना में अज्ञानता भी अपना कार्य करती है। अज्ञानता-वश नए रूप बन जाते हैं और प्रबलित हो जाते हैं। मरना से मरा, धरना से धरा की भाँति करना से 'करा' रूप गुड़ है पर अज्ञानवश देना से दिया और लेना से लिया के सदृश करना से किया रूप प्रचलित हो गया जो व्याकरण की दृष्टि से अगुड़ होते हुए भी व्यापक रूप से इसका प्रयोग किया जाता। 'मैंने करा' गुड़ होने हुए भी अगुड़ माना जाता है। इस प्रकार व्याकरण के अगुड़ रूपों का व्यवहार भाषा में लगातार हो रहा है। संस्कृत के शब्द का सदृश रूप, लक्षणना, मोक्ष्यता तथा सादृश्यता आदि उदाहरण खोजने पर निम्न सकते हैं। लोक-भाषाओं में कुटिलताई, मिश्रताई, गुप्तरताई आदि रसाम में आते हैं। सादृश्य के आधार पर इन अज्ञानता के कारण माहिषिक भाषा में भी अन्तर्कषा, अन्तर्भाव, राजनैतिक तथा उपरोक्त जैसे अगुड़ रूप प्रचलित हो गये हैं।

(३) नवीनता की प्रवृत्ति—इसपर हिन्दी माहिषिक में नवीन शब्दों के निर्माण की प्रवृत्ति चर्च पड़ी है। नूतन शब्द-निर्माण के लिए विविध रूप से उपसर्ग और प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है। मृदुता के लिए मादर, निमित्त के लिए विनिमित्त, प्रवर्त्ता के लिए प्रानर्त्त आदि शब्द इन प्रवृत्ति के चोख हैं।

(४) सदाता—प्राची भाषा में एकवचन तथा बहुवचन के स्पष्ट करने









जिए तथा सामान्य रूप से बैठिये शब्द का प्रयोग किया जाता है। जो समाज जितना ही अधिक सम्य तथा सुसंस्कृत होगा अर्थ-भेद की मात्रा उतनी ही भाषा में मिलेगी।

(४) भ्रम या मिथ्या प्रतीति का नियम (Law of False Perception) — किसी शब्द के रूप को देखकर हमें कभी-कभी भ्रमवश उस शब्द के अन्य अर्थ का भाव होने लगता है और आगे चलकर वही भ्रामक अर्थ प्रचलित हो जाता है। फलतः अर्थ में विकार पैदा हो जाता है। यही मिथ्या प्रतीति का नियम है। स्वराघात तथा बलाघात से इस प्रकार के रूपों का सर्वप्रथम निर्माण हुआ और बाद में वही ग्राह्य होकर व्याकरण का अंश बन गये। व्याकरणिक उद्योतन से शब्दों में प्रकृति प्रत्यय का ज्ञान न होने से उनका रूप भ्रमवश सामान्य तथा स्वाभाविक समझ लिया गया। यथा ध्रेष्ठ (=सबसे अच्छा) का निर्माण प्रसस्प + इष्टन् से हुआ है। इष्टन् प्रत्यय की प्रकृति का स्वरूप स्पष्ट न होने से इसे मूल शब्द समझा जाने लगा। इसके भी प्रत्ययान्त रूप ध्रेष्ठ, ध्रेष्ठतर,

इन मुष्ट विभक्तियों के अस्तित्व को बनाए रखने की मनोवृत्ति कभी कभी भाषा में दिखाई पड़ जाती है, जैसे हठात्, दैवात् दैववशात् आदि । नूरम दृष्टि से अर्थ परिवर्तन का मूल भी ऐसे रूपों में दृष्टिगत होता है, यथा कृपया का अर्थ 'कृपा से' न होकर 'कृपा करके' लिया जाता है । इसी प्रकार परिणामत का अर्थ 'परिणाम से' ( पञ्चमी प्रत्यय का रूप ) न लेकर 'परिणाम स्वरूप' के अर्थ में लिया जाता है । भोजपुरी रूप 'घरे', 'दुवारे' में सप्तमी—'ए' का मूल रूप अब भी सुरक्षित है ।

(६) नये लाभ के नियम—भाषा में जब एक और कुछ प्रत्यय, विभक्तियों का लोप होता है तो दूसरी और नए रूपों और अर्थों का विकास होता है । प्रसिद्ध भाषाविद् ब्रोन ने, कर्मवाच्य, क्रिया-विशेषण, अव्यय तथा कृदन्त को ह्राम के परिणामस्वरूप नवीन रूपों में लिया है । उनके मत में ह्राम हुए रूपों

जिए तथा सामान्य रूप से बँठिये। शब्द का प्रयोग किया जाता है। जो सम-  
जितना ही अधिक सम्य तथा सुमसूज होगा धर्म-भेद की मात्रा उतनी  
भाषा में मिलेगी।

(४) भ्रम या मिथ्या प्रतीति का नियम (Law of False Perception)  
कितनी शब्द के रूप को देखकर हमें कभी-कभी भ्रमवश उस शब्द के अन्य  
का भाव होने लगता है और घागे चलकर वही भ्रामक धर्म प्रचलित हो जा-  
ता है। फलतः धर्म में विकार पैदा हो जाता है। यही मिथ्या प्रतीति का नियम  
है। स्वरपात तथा बलापात से इस प्रकार के रूपों का सर्वप्रथम निर्माण हुआ  
और बाद में वही ग्राह्य होकर व्याकरण का धरा बन गये। व्याकरणिक उपाय  
तन से शब्दों में प्रकृति प्रत्यय का ज्ञान न होने से उनका रूप भ्रमवश सामान्य  
तथा स्वाभाविक समझ लिया गया। यथा श्रेष्ठ (=सबसे अच्छा) का निर्माण  
प्रशस्य + इष्टन् से हुआ है। इष्टन् प्रत्यय की प्रकृति का स्वरूप स्पष्ट न होना  
से इसे मूल शब्द समझा जाने लगा। इसके भी प्रत्ययान्त रूप श्रेष्ठ, श्रेष्ठतम  
श्रेष्ठतम रूप में प्रयुक्त होते हैं। ज्येष्ठ भी इसी प्रकार का रूप है।

शब्द रूपों की इस मिथ्या-प्रतीति से धर्म के उत्कर्ष और अपकर्ष का भाव  
भी हो जाता है। प्राचीन साहित्य में असुर का धर्म 'देवता' था जिसकी रचना  
असु = प्राण शब्द में हुई परन्तु अब इसका अपकर्ष अ + सुर = राक्षस के धर्म में  
हो गया है। साहसी का पूर्व धर्म 'डाकू' था परन्तु उत्कर्ष होकर इसका प्रयोग  
अदम्य उत्साह के लिए होने लगा। भ्रमवश कभी-कभी दुहरे प्रयोग चल जाते  
हैं। जैसे परन्तु फिर भी (एक प्रयोग उचित है), गुन रोगन (=तेल) का तेल,  
गुलमेहदी का फूल (गुल = फूल), हिमाचल पर्वत मलयगिरि (=पर्वत) पर्वत,  
काबुल वाला के स्थान पर काबुलीवाला आदि शब्दों के द्वित्व रूपों का प्रयोग  
प्रचलित है।

(५) विभक्तियों के भगनावशेष का नियम (Law of Survival  
tions) — जैसे भाषा सयोगावस्था से वियोगावस्था की  
तो ध्वनि लोप के कारण विभक्तियों का लोप हो जाता है  
कारक-बिह्व या परसर्गों का प्रयोग होने लगता है।  
कृत्यों का लोप होकर परसर्ग जुड़कर विभक्तियों का

इन मुक्त विभक्तियों के अस्तित्व को बनाए रखने की मनोवृत्ति कभी कभी भाषा में दिखाई पड़ जाती है, जैसे हठात्, देवात् देववशात् आदि। सूक्ष्म दृष्टि से अर्थ परिवर्तन का मूल भी ऐसे रूपों में दृष्टिगत होता है, यथा कृपा का अर्थ 'कृपा में' न होकर 'कृपा करके' लिया जाता है। इसी प्रकार परिणामत का अर्थ 'परिणाम से' (पचमी प्रत्यय का रूप) न लेकर 'परिणाम स्वरूप' के अर्थ में लिया जाता है। भोजपुरी रूप 'परे', 'दुवारे' में सप्तमी—'ए' का मूल रूप अव भी मुरझित है।

(६) सभे सभ के नियम—भाषा में जब एक ओर कुछ प्रत्यय, विभक्तियों का लोप होता है तो दूसरी ओर नए रूपों ओर अर्थों का विकास होता है। प्रसिद्ध भाषाविद् ब्रैल ने, कर्मवाच्य, क्रिया-विशेषण, अव्यय तथा कृदन्त को ह्रास के परिणामस्वरूप नवीन रूपों में लिया है। उनके मत में ह्रास हुए रूपों की क्षतिपूर्ति नवीन रूपों के भाषा में आने में हो जाती है। क्रिया रूपों में अव्यय कृदन्त तथा क्रिया विशेषण का अस्तित्व अर्वाचीन तथा आधुनिक अवस्था की चीज है। ब्रैल के मतानुसार जब सज्ञा या विशेषण का कोई विशिष्ट रूप विभक्तियों का त्याग कर अव्यय रूप में स्थित हो जाता है तब उसका वह रूप क्रिया-विशेषण बन जाता है। उदाहरणार्थ 'चिरम् आगत्य' (देर में आया हुआ) में चिरम् की द्वितीया विभक्ति का ह्रास अनुक्त होकर अव्यय रूप में आ गया तथा चिरम विशेषण को क्रिया-विशेषण के रूप में ग्रहण किया जाने लगा। अस्मात् ने अस्मात् इसी प्रकार के रूप हैं।

(७) उपमान का नियम—प्रचलित शब्द के अनुकरण पर नवीन शब्द की सृष्टि भाषा में होती रहती है। मानव भाव तथा रूप-माध्य के आधार पर नए शब्दों का प्रयोग मरतता तथा सुविधा के लिए वर्तता है। यह उपमान का नियम मरत तथा समान रूप की रचना में सहायक होता है। इन नियम का उपयोग भाव-प्रवाशन की कठिनाई को दूर करने तथा भाव तथा रूप में स्पष्टता लाने के लिए होता है। किसी विषय अथवा सादृश्य को नस्तिगामी बनाने में तथा प्राचीन और नवीन नियमों में नए रूप की समति पैठाने में इसका प्रबल हाथ है। अनुमान किया जाता है कि भाषागत काल में शब्दों के अनेक प्रत्यय तथा रूप थे परन्तु सुविधानुसार उपमान के सहारे वैदिक युगीन

लिए तथा सामान्य रूप से बैठिये शब्द का प्रयोग किया जाता है। जो समान जितना ही अधिक साम्य तथा गुमसूत होगा भय-भेद की भाषा उतनी ही भाषा में मिलेगी।

(४) भ्रम या मिथ्या प्रतीति का नियम (Law of False Perception)—किसी शब्द के रूप को देखकर हमें कभी-कभी भ्रमवश उस शब्द के अन्य अर्थ का भाव होने लगता है और भागे चलकर वही भ्रामक अर्थ प्रचलित हो जाता है। फलतः अर्थ में विकार पैदा हो जाता है। यही मिथ्या प्रतीति का नियम है। स्वराघात तथा बलाघात से इस प्रकार के रूपों का सर्वप्रथम निर्माण हुआ और बाद में वही ग्राह्य होकर व्याकरण का अंश बन गये। व्याकरणिक उद्योतन से शब्दों में प्रकृति प्रत्यय का ज्ञान न होने से उनका रूप भ्रमवश सामान्य तथा स्वाभाविक समझ लिया गया। यथा श्रेष्ठ (=सबसे अच्छा) का निर्माण प्रशस्य + इष्टन् से हुआ है। इष्टन् प्रत्यय की प्रकृति का स्वरूप स्पष्ट न होने से इसे मूल शब्द समझा जाने लगा। इसके भी प्रत्ययान्त रूप श्रेष्ठ, श्रेष्ठतर, श्रेष्ठतम रूप में प्रयुक्त होते हैं। ज्येष्ठ भी इसी प्रकार का रूप है।

शब्द रूपों की इस मिथ्या-प्रतीति से अर्थ के उत्कर्ष और अपकर्ष का भाव भी हो जाता है। प्राचीन साहित्य में असुर का अर्थ 'देवता' था जिसकी रचना असु = प्राण शब्द में हुई परन्तु अब इसका अपकर्ष अ + सुर = राक्षस के अर्थ में हो गया है। साहसी का पूर्व अर्थ 'डाकू' था परन्तु उत्कर्ष होकर इसका प्रयोग अदम्य उत्साह के लिए होने लगा। भ्रमवश कभी-कभी दुहरे प्रयोग चल जाते हैं। जैसे परन्तु फिर भी (एक प्रयोग उचित है), गुल रोगन (=तेल) का तेल, गुलमेहदी का फूल (गुल = फूल), हिमाचल पर्वत मलयागिरि (=पर्वत) पर्वत, काबुल वाला के स्थान पर काबुलीवाला आदि शब्दों के द्वित्व रूपों का प्रयोग प्रचलित है।

(५) विभक्तियों के भगनावशेष का नियम (Law of Survival of Inflections)—जैसे भाषा सयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर अग्रसर होती है तो ध्वनि लोप के कारण विभक्तियों का लोप हो जाता है तथा उनके स्थान पर कारक-चिह्न या परसर्गों का प्रयोग होने लगता है। हिन्दी में संस्कृत विभक्तियों का लोप होकर परसर्ग जुड़कर विभक्तियों का भाव प्रकट करने लगे।

इन मुक्त विभक्तियों के अस्तित्व को बनाए रखने की मनोवृत्ति कभी कभी भाषा में दिखाई पड़ जाती है, जैसे हठात्, देवान् देववशात् आदि। मूलम दृष्टि में अर्थ परिवर्तन का मूल भी ऐसे रूपों में दृष्टिगत होता है, यथा कृपा का अर्थ 'कृपा से' न होकर 'कृपा करके' लिया जाता है। इसी प्रकार परिणामत का अर्थ 'परिणाम से' (पचमी प्रत्यय का रूप) न लेकर 'परिणाम स्वरूप' के अर्थ में लिया जाता है। भोजपुरी रूप 'घरे', 'दुवारे' में सप्तमी—'ए' का मूल रूप अव भी मुरक्षित है।

(६) नये लाभ के नियम—भाषा में जब एक ओर कुछ प्रत्यय, विभक्तियों का लोप होता है तो दूसरी ओर नए रूपों और अर्थों का विकास होता है। प्रसिद्ध भाषाविद् ब्रैल ने, कर्मवाच्य, क्रिया-विशेषण, अव्यय तथा कृदन्त को ह्रास के परिणामस्वरूप नवीन रूपों में लिया है। उनके मन में ह्रास हुए रूपों की क्षतिपूर्ति नवीन रूपों के भाषा में आने में हो जाती है। क्रिया रूपों में अव्यय कृदन्त तथा क्रिया विशेषण का अस्तित्व अर्वाचीन तथा आधुनिक अवस्था की चीज है। ब्रैल के मतानुसार जब सज्ञा या विशेषण का कोई विशिष्ट रूप विभक्तियों का त्याग कर अव्यय रूप में म्रियत हो जाना है तब उसका वह रूप क्रिया-विशेषण बन जाता है। उदाहरणार्थ 'चिरम् आगम्य' (देर से आया हुआ) में चिरम् की द्वितीया विभक्ति का रूप अग्रपुन्य होकर अव्यय रूप में आ गया तथा चिरम विशेषण को क्रिया-विशेषण के रूप में ग्रहण किया जाने लगा। अस्मान् ने अकस्मान् इसी प्रकार के रूप हैं।

(७) उपमान का नियम—प्रचलित शब्द के अनुकरण पर नवीन शब्द की सृष्टि भाषा में होती रहती है। मानव भाव तथा रूप-माध्य के आधार पर नए शब्दों का प्रयोग सरलता तथा सुविधा के लिए करता है। यह उपमान १ नियम सरल तथा समान रूप की रचना में सहायक होता है। इस नियम १ उपयोग भाव-प्रकाशन की बठिनाई को दूर करने तथा भाव तथा रूप में पड़ता खाने के लिए होता है। किसी विषय अथवा सादृश्य की शक्तिशाली बनाने में तथा प्राचीन और नवीन नियमों में नए रूप की समझ बैठाने में इसका प्रबल हाथ है। अनुमान किया जाता है कि भारतीय बाल में शब्दों के अनेक प्रत्यय तथा रूप थे परन्तु सुविधानुसार उपमान के सहारे बंडिक मुग़ीन

मानव ने एक रूप को नवीनता के साथ ग्रहण किया तो अवेस्ता तथा ग्रीक वालों ने उसी या दूसरे रूप को नए स्वरूप के साथ ग्रहण किया। उत्तम पुरुष वर्तमान के दो प्रत्यय थे 'मि' और 'ओ' परन्तु उपमान से उनमें भेद मिट गया। संस्कृत में 'मि' को, तो ग्रीक में 'ओ' को अपनाया गया। संस्कृत के 'अस्मि' और अवेस्ता के 'आहि' से मिला जुला रूप 'एहि' ग्रीक में मिलता है।

(८) अनुपयोगी रूपों का विनाश—जब एक भाषा में एक अर्थ वाची अनेक शब्दों का प्रचलन होता है तो प्रयोगानुसार उनमें से कुछ विशिष्ट शब्द जीवित रहते हैं तथा शेष शब्दों को अनुपयोगी समझकर उनका प्रयोग कम हो जाता है। फलतः वे नष्ट तथा लुप्त हो जाते हैं। वैदिक संस्कृत में शब्द तथा धातुओं के एक ही अर्थवाची अनेक रूप प्रयुक्त किए गए हैं परन्तु लौकिक संस्कृत तक आते-आते उनके कुछ निश्चित रूप ही अर्थाशेष रहे। शेष रूप अनुपयोगिता के कारण व्यवहृत न हो पाये। यही स्थिति लौकिक संस्कृत और प्राकृत अथवा अपभ्रंश तक रही और यही प्रवृत्ति आधुनिक हिन्दी आदि भाषाओं में भी दिखाई देती है। उदाहरण रूप में वैदिक संस्कृत में देखने के अर्थ में दो धातुएँ थी—स्पृश् और दृश् पर उत्तरयुग में 'पश्य' को एक ही धातु 'दृश्' का आदेश मान लिया गया। इसी प्रकार हिन्दी में संस्कृत के द्विवचन का लोप हो गया। अनेक-रूप शब्दों का लोप अधिकता से दिखाई देता है जब कि एक रूप वाले पद भाषा में प्रायः स्थिर रहे। इन रूपों का अर्थ पर भी अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है।

प्रश्न १५—अर्थ-परिवर्तन की दिशाओं के आधार का उल्लेख कीजिए। उपयुक्त उदाहरण भी दीजिए।

शब्द और अर्थ का अभिन्न सम्बन्ध है। शब्द और अर्थ का योग ही भाषा को मार्फत और भावगम्य बनाता है। वास्तव में अर्थ ही शब्द का प्राण है। बिना अर्थ प्रतीति के शब्द का अस्तित्व व्यर्थ तथा निष्कृत है। भाषा परिवर्तन से शब्द और अर्थ दोनों में ही विकार पैदा हो जाता है। अर्थत्व के परिवर्तन या विनाश की अनेक अवस्थाएँ हैं। कभी शब्द के अर्थ का विनाश होकर उसका क्षेत्र व्यापक हो जाता है यथा तेन प्राचीन समय में 'जिन के मार' का शब्द का परम सनी वस्तुओं के तनों के लिए इतरा प्रयोग होता है।



कभी अर्थ में सकोच हो जाता है। इस प्रकार अर्थ-परिवर्तन या विकास को एक दिशा नहीं अपितु विभिन्न दिशाएँ हैं।

**अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ**

अर्थ-विज्ञान के ज्ञाता ब्रूल के अनुसार अर्थ-विकास की प्रमुखतः तीन दिशाएँ हैं— १. अर्थ-विस्तार, २ अर्थ-सकोच और ३ अर्थ-दिश। कुछ अन्य दिशाएँ भी हैं जिन पर आगे प्रकाश डालना अनिवार्य है।

१. अर्थ-विस्तार (Expansion of meaning)—अर्थ-विस्तार में शब्दों का अर्थ एक सकीर्ण सीमा का प्रतिनिधित्व कर व्यापक रूप धारण कर लेता है। अर्थ का विस्तृत होकर व्यापक हो जाना ही अर्थ-विस्तार है। यह अर्थ-विस्तार भाषा में कम मात्रा में होता है। कारण स्पष्ट है कि भाषा के अधिक उन्नत, समृद्ध और विकसित हो जाने पर उसमें सूक्ष्म से सूक्ष्म और सीमित से सीमित भावनाओं को अभिव्यक्ति देने की शक्ति आ जाती है। अतः स्वाभाविक रूप से अर्थ सामान्य से विशेष की ओर विकसित हो जाता है। अर्थ सकोच का बाहुल्य हो जाना है। अर्थ-विस्तार से अर्थ का सामान्य रूप बढ़ जाता है।

उदाहरणार्थ—‘गवेषणा’ शब्द आदि में गाय खोजने में प्रयुक्त होता था पर आज प्रत्येक शोध-कार्य तथा खोज के लिए इसका प्रयोग होता है। आरम्भ में कानें रंग को स्पर्श करते थे परन्तु नीली, लाल रोशनी के लिए भी यह शब्द सामान्य रूप से व्यवहृत होता है। पूर्वकाल में पुष्प करने वाले को ‘निपुण’, कुत्ता लाने में चतुर को ‘कुशल’ तथा बीणा बजाने में सिद्धहस्त को ‘प्रवीण’ कहते थे परन्तु आज तीनों शब्दों का प्रयोग सामान्य रूप से सब काम में पूर्ण पड़ित या चतुर अर्थ में होता है। ‘गोहार’ गी के हरण पर की गई पुकार को कहते थे पर अब सब प्रकार की प्रार्थना ‘गोहार’ है। ‘मन्त्री’ सज्ज (हथ) के आधार पर हरी सन्धियों या पर्याय था, किन्तु अब सभी साग मन्त्रियाँ हैं। अतः अर्थ का विस्तार हो गया है। कई बार व्यक्तिवाचक सज्ञाएँ जाति-वाचक बन कर विस्तार कर लेती हैं। जैसे सड़ाई करने वाले को ‘नारद’ तथा घर के भेदिए को ‘विभीषण’ कह देते हैं। यहाँ तो अनेक ‘कालिदास’ हैं अर्थात् कालिदास के समान विद्वानों का अर्थ है।

२. अर्थ-संकोच (Contraction of meaning)—अर्थ का संकुचन या

मानव ने एक रूप को नवीनता के साथ ग्रहण किया तो अवेस्ता तथा ग्रीक वालों ने उसी या दूसरे रूप को नए स्वरूप के साथ ग्रहण किया। उत्तम पुरुष वर्तमान के दो प्रत्यय थे 'मि' और 'ओ' परन्तु उपमान से उनमें भेद मिट गया। संस्कृत में 'मि' को, तो ग्रीक में 'ओ' को अपनाया गया। संस्कृत के 'अस्मि' और अवेस्ता के 'आहि' से मिला जुला रूप 'एहि' ग्रीक में मिलता है।

(८) अनुपयोगी रूपों का विनाश—जब एक भाषा में एक धर्म या चीज अनेक शब्दों का प्रचलन होता है तो प्रयोगानुसार उनमें से कुछ विशिष्ट शब्द जीवित रहते हैं तथा शेष शब्दों को अनुपयोगी समझकर उनका प्रयोग कम हो जाता है। फलतः वे नष्ट तथा लुप्त हो जाते हैं। वैदिक संस्कृत में शब्द तथा धातुओं के एक ही धर्मवाची अनेक रूप प्रयुक्त किए गए हैं परन्तु लौकिक संस्कृत तक आते-आते उनके कुछ निश्चित रूप ही अवशिष्ट रहे। शेष का अनुपयोगिता के कारण व्यवहृत न हो पाये। यही स्थिति लौकिक संस्कृत और प्राकृत अथवा अपभ्रंश तक रही और यही प्रवृत्ति प्राधुनिक हिन्दी और भाषाओं में भी दिखाई देती है। उदाहरण रूप में वैदिक संस्कृत में देवने के धर्म में दो धातुएँ थी—दृग् और दृश् पर उत्तरयुग में 'पश्य' को एक ही धातु 'दृश्' का आदिभ मान लिया गया। इसी प्रकार हिन्दी में संस्कृत के द्वि-वचन का लोप हो गया। अनेक-रूप शब्दों का लोप अधिकता में दिखाई देता है जब कि एक ही चीज दो भाषा में प्राप्त स्थिर रहे। इन रूपों का धर्म पर भी अत्यन्त प्रभाव पड़ा है।

प्रश्न १२—धर्म-परिवर्तन की दिशाओं के आधार का जहाँ अनुसृत उदाहरण भी दीजिए।

शब्द और धर्म का अभिन्न सम्बन्ध है। शब्द और धर्म का संबंध और भारस्म्य बताया है। वास्तव में धर्म ही है बिना धर्म की शक्ति के शब्द का अस्तित्व धर्म नष्ट निरर्थक है शब्द और धर्म दोनों में ही विचार पैदा हो जाता है वास्तव में प्रत्येक धर्मवाचक है। सभी शब्दों में प्रत्येक धर्म ही प्रकट होता है तथा धर्म ही प्रकट होता है तथा धर्म ही प्रकट होता है

गता का बाड़ी (स० वाटिका) घर का छोनक हो गया है।

अर्थ-परिवर्तन को निम्न दिशाएँ भी हो सकती हैं—

४. अर्थोत्कर्ष—अर्थ-विक्राम में कभी-कभी अर्थ पढ़ने में अधिक उन्नत प्रच्छेद भाव को ग्रहण कर लेने हैं। इसी को अर्थोत्कर्ष कहते हैं। परिवर्तन में उदात्तता अर्थ उत्कर्ष या उत्थान हो जाता है। यह अर्थोत्कर्ष के उदात्त के कम ही मिलने हैं। जैसे, सम्वृत में 'माहम' शब्द बुरे अर्थ (व्यवसाय आदि) में प्रयुक्त होता था पर अब उच्च तथा सगर्हनीय कार्य के लिये होता है। यथा—मनुष्य मारण स्तेय परदागभिमर्षणम्।

पारम्यमनूत चैव माहस पचया स्मृतम् ॥

इस में 'मृग' का अर्थ 'मूढ' होता था। अब 'मोहित' या 'प्रमत्त' का बोध करता है। सम्वृत में 'कपट' पानी 'कपट' जीर्ण वस्त्र के लिए प्रयुक्त होता था, अब प्रच्छेद मुन्दर वस्त्र के लिए प्रयुक्त होता है। ऐसे ही इण्डियन, बन्दी आदि शब्दों का भी अर्थोत्कर्ष हो गया है।

५. अर्थपक्षर्प—यह अर्थोत्कर्ष का विलोम है। जब अर्थ-परिवर्तन में शब्द के अर्थ में गिरावट आ जाती है या निम्न कोटि के भाव को प्रकट करने लगता है तो वहाँ अर्थपक्षर्प होता है। ये निम्न तथा बुरे अर्थ ही प्रधान हो जाते हैं। यथा—कयोग ने 'हरिजन' शब्द का प्रयोग भक्त के अर्थ में किया है, अब छलूतों का भाव उसमें समा गया है। सम्वृत का 'जुगुप्सा' शब्द 'गुप्' धातु से बना है जिसका अर्थ पालना या छिपाना है पर इसका प्रयोग अब 'घृणा' अर्थ में किया जाता है। पहले मत् और असत् का अर्थ विद्यमान और अविद्यमान होता था, परन्तु अब भला-बुरा या भूठ-सच हो गया है। वाम-शाम्भ में प्रयुक्त होने के कारण सम्वृत के सहवाम, प्रसंग, समागम, भोग आदि शब्द सकीर्ण बन गए हैं और उनके अर्थ में अश्लीलता के कारण अपक्षर्प हो गया है। कभी-कभी तत्सम शब्द ठीक अर्थ में प्रयुक्त होता है पर उससे निम्न शब्द शब्द का अर्थपक्षर्प हो जाता है, यथा 'गाम्भिर्य', 'घन' सम्वृत शब्द 'गम्भीर' और 'स्तन' से निकले हैं पर इनका प्रयोग मानव के लिए न होकर पशुओं के लिए होता है। जैन साधुओं के लिए 'नग्न', 'लुब्ध' तथा 'पापशी' का प्रयोग आदर के लिए होता था, पर उनका उद्भव रूप नगा,

सीमित हो जाना ही अर्थ-संकोच है। भाषा का विकास अर्थ-मकोच की दिशा में अधिक होना है मत इसका महत्व अपरिमित है। प्रारम्भिक युग में भाषा में शब्द सामान्य या विस्तृत अर्थ के चोटक रहें परन्तु मन्थना के विकास के साथ उनमें सिंगिष्ट अर्थ प्रतिपादन की भावना घानी गई और अर्थ-संकोच का प्राधिक्य भाषा में लक्षित होने लगा। अर्थ विज्ञान के मनीषी शील का कथन है—‘राष्ट्र या जानि जितनी ही अधिक विकसित होंगी उसरी भाषा में अर्थ-संकोच के उदाहरण उतने ही अधिक मिलेंगे। उदाहरण के लिए—संस्कृत के ‘मृग’ शब्द का प्रयोग पशु या जानवर मात्र के लिए होता था पर अब उसका प्रयोग हरिण के लिए सीमित हो गया है। भार्या का अर्थ—‘त्रिमूर्ति भरण पोषण किया जाय’ अब यह पत्नी के लिए रुझ हो गया है। गो (गम् धातु से) का अर्थ ‘गमन करने वाला’ है परन्तु आज गाय के लिए व्यवहृत होता है। ‘मुगं’ का फारसी भाषा में अर्थ पक्षी मात्र है जैसे कि मुतुरमुगं और मुगांभी (जल-पक्षी) से स्पष्ट है। पर उर्दू, हिन्दी में पक्षी विशेष का बोध होता है। थड़ा से किया जाने वाला प्रत्येक कार्य ‘थड़ा’ कहा जाता है पर अब मृत्यु के बाद के कार्य विशेष का ज्ञान कराता है। ढूँढ़ने पर प्रत्येक भाषा में अर्थ-संकोच के अनेकानेक उदाहरण मिल सकते हैं।

३. अर्थान्तर (Transference of meaning)—विचार-माहचर्य या भाव-शक्तता के कारण एक शब्द के प्रधान तथा गौण अर्थ चलने लगते हैं किन्तु कालान्तर में प्रधान अर्थ का धीरे-धीरे लोप हो जाता है और उस शब्द का गौण अर्थ ही प्रचलित हो जाता है। इस प्रकार प्रमुख अर्थ के स्थान पर नवीन अर्थ के आ जाने को अर्थान्तर कहते हैं। इसमें प्रधान अर्थ का बोध होकर गौण अर्थ का तत्स्थान आदेश हो जाता है। उदाहरणार्थ—‘गँवार’ का अर्थ पहले ‘गाँव का रहने वाला’ था। ग्रामवासी अधिकतर असभ्य और असंस्कृत होते हैं। उसी के आधार पर आजकल उसका प्रचलित अर्थ ‘असभ्य’ या ‘असंस्कृत’ है। ‘बर’ का अर्थ श्रेष्ठ या अब ‘दुलहे’ का बोध कराता है। सम्राट् अशोक ‘देवाना प्रिय’ कहा जाता था पर बाद में उसका अर्थ भूख हो गया। प्रारम्भिक ऋग्वेदिक ऋचाओं में अशुर देववाची शब्द कुछ समय बाद राक्षसवाची बन गया, दुहितृ का अर्थ दुहने वाली था, अब गौण।

बगना वा बाढी (म० वाटिका) घर का छोटा हो गया है ।

अर्थ-परिवर्तन की निम्न दिशाएँ भी हो सकती हैं

४ अर्थोन्मूल्य — अर्थ विज्ञान में कभी कभी अर्थ पर न स उचित रहने और अर्थ भाव या दृष्टि बन गया है । इसी का अर्थोन्मूल्य कहते हैं । परिवर्तन में घर में उदात्तता अथ उन्मूल्य का प्रयोग हो जाता है । घर का 'बगना' दृष्टि भाव में कम हो मित्रित है । जैसे मरुत में मरुत दूर दूर (नव बार हुआ घाटि) में प्रयुक्त होता था पर अब उन्मूल्य रूप में 'मरुत' का अर्थ कृति अर्थोन्मूल्य होता है । यथा — मरुत मरुत मरुत दूर दूर प्रयुक्त ।

पाणिनीयम् । अथ माहम् नवम् मरुतम् ॥

सम्भूत में 'मरुत' का अर्थ 'मृद' होता था । अब माहिन का प्रयोग का बोध कराता है । सम्भूत में कपट पर न कपट जीव का अर्थ के लिए प्रयोग होता था अब अस्ते मृन्दर अर्थ के लिए प्रयुक्त होता है । तब ही उचित्यन, बारी आदि शब्दों का भी अर्थोन्मूल्य हो गया है ।

५ अर्थोपवर्ध — यह अर्थोन्मूल्य का विनाश है । जब अर्थ परिवर्तन में शब्द के अर्थ में गिरावट आ जाती है या निम्न वाटि के भाव या प्रकट करने लगता है तो वहाँ अर्थोपवर्ध होता है । ये निम्न तथा दूर ही प्रधान हो जाते हैं । तथा—खबीर ने 'हरिजन' शब्द का प्रयोग भक्त र अर्थ में किया है अब अछूतों का भाव उसमें समा गया है । सम्भूत का 'जुगुप्सा' शब्द 'गुप्' धातु से बना है जिसका अर्थ पालना या छिपाना है पर इसका प्रयोग अब 'घृणा' अर्थ में किया जाता है । पहले सन् और असन् का अर्थ विद्यमान और अविद्यमान होता था, परन्तु अब भला-बुरा या भूठ गच हो गया है । काम-दान्य में प्रयुक्त होने के कारण सम्भूत के मरुत, प्रमन, समागम, भोग आदि शब्द सकीर्ण बन गए हैं और उनके अर्थ में अश्लीलता के कारण अपकर्ण हो गया है । कभी-कभी तत्सम शब्द ठीक अर्थ में प्रयुक्त होता है पर उससे निम्न तद्भव शब्द का अर्थोपवर्ध हो जाता है, यथा 'गामिन', 'धन' सम्भूत शब्द 'गमिणी' और 'स्तन' में निकले हैं पर इनका प्रयोग मानव के लिए न होकर पशुओं के लिए होता है । जैन साधुओं के लिए 'नमन', 'लुचित' तथा 'पापशुद्धी' का प्रयोग आदर के लिए होता था, पर उनका तद्भव रूप नगा,

सीमित हो जाना हो अर्थ-संकोच है। भाषा का विकास अर्थ-संकोच की दिशा में अधिक होता है अतः इसका महत्व अपरिमित है। प्रारम्भिक युग में भाषा में शब्द सामान्य या विस्तृत अर्थ के द्योतक रहे परन्तु सम्प्रति के विकास के साथ उनमें विशिष्ट अर्थ प्रतिपादन की भावना आती गई और अर्थ-संकोच का आधिपत्य भाषा में लक्षित होने लगा। अर्थ विज्ञान के मनीषी ब्रौल का कथन है—'राष्ट्र या जाति जितनी ही अधिक विकसित होगी उसकी भाषा में अर्थ-संकोच के उदाहरण उतने ही अधिक मिलेंगे। उदाहरण के लिए—संस्कृत के 'मृग' शब्द का प्रयोग पशु या जानवर मात्र के लिए होता था पर अब उसका प्रयोग हरिण के लिए सीमित हो गया है। भार्या का अर्थ—'जिसका भरण पोषण किया जाय' अब यह पत्नी के लिए रूढ़ हो गया है। गो (गम् धातु से) का अर्थ 'गमन करने वाला' है परन्तु आज गाय के लिए व्यवहृत होता है। 'मुर्ग' का फारसी भाषा में अर्थ पक्षी मात्र है जैसे कि शुतुरमुर्ग और मुर्गशी (जल-पक्षी) से स्पष्ट है। पर उर्दू, हिन्दी में पक्षी विशेष का बोध होता है। धड़ा से किया जाने वाला प्रत्येक कार्य 'आढ़' कहा जाता है पर अब मृत्यु के बाद के कार्य विशेष का ज्ञान कराता है। ढूँढ़ने पर प्रत्येक भाषा में अर्थ-संकोच के अनेकानेक उदाहरण मिल सकते हैं।

३. अर्थादेश (Transference of meaning)—विचार-साहचर्य या भाव-शबलता के कारण एक शब्द के प्रधान तथा गौण अर्थ चलने लगते हैं किन्तु कालान्तर में प्रधान अर्थ का धीरे-धीरे लोप हो जाता है और उस शब्द का गौण अर्थ ही प्रचलित हो जाता है। इस प्रकार प्रमुख अर्थ के स्थान पर नवीन अर्थ के आ जाने को अर्थादेश कहते हैं। इसमें प्रधान अर्थ का बोध होकर गौण अर्थ का तत्स्थान आदेश हो जाता है। उदाहरणार्थ—'गँवार' का अर्थ पहले 'गाँव का रहने वाला' था। ग्रामवासी अधिकतर ग्राम्य और अग्रज होते हैं। उसी के आधार पर आजकल उसका प्रचलित अर्थ 'ग्राम्य' या 'ग्रामज' है। 'बट' का अर्थ धोखे या ध्रुव 'दुलहे' का बोध कराना है। मग्राद् अज्ञोक्त 'देवाना प्रियः' कहा जाता था पर बाद में उसका अर्थ मृत्यु हो गया। प्रारम्भिक ऋग्वेदिक ऋचाओं में अश्व देवताओं के शब्द कुछ समय बाद राक्षसवादी बन गया। अश्व का अर्थ दहने वाली था, अब गौण अर्थ 'पुत्री' के रूप में हो गया।

बगना का बाहो (म० वाटिका) घर का घोरक हो गया है ।

अथ-परिवर्तन की निम्न विधाएँ भी हो सकती हैं -

४ अर्थोत्पत्ति—अथ प्रिकाम म कभी कभी अथ पदों में अधिक उन्नत और अन्त भाग का पद बन जाता है । इसी को अर्थोत्पत्ति कहते हैं । परिवर्तन में अथ में उन्नतता अथ उत्पत्ति या उद्घात हो जाता है । यह अर्थोत्पत्ति व उदाहरण भाग म कम ही मिलते हैं । जैसे मङ्गल म माहम पद पर छा (जब-बार हुआ आदि) म प्रयुक्त होना था पर अब पद का भाव माहमनीय रूप के लिए ध्वस्त हो जाता है । यथा—मन्त्राय माहम इत्येव परदार्याभिप्रेत्यम् ।

प्राशस्त्यमन्त्राय वैव माहम पञ्चमा मन्त्रम् ॥

संस्कृत में 'मन्त्र' का अर्थ 'मुद्र' होता था । अब 'माहम' या 'प्रशस्त' का बोध कमजाता है । संस्कृत म कपट पर्याय कपट जीव पद के लिए प्रयुक्त होता था अब अच्छे मुन्दर वस्त्र के लिए प्रयुक्त होता है । तम ही दृष्टियन्त, बन्दी आदि शब्दों का भी अर्थोत्पत्ति हो गया है ।

५ अर्थविकल्प—यह अर्थोत्पत्ति का विनाश है । जब अथ परिवर्तन म शब्द के अर्थ में गिरावट आ जाती है या निम्न वाटि के भाव को प्रकट करने लगता है तो वहाँ अर्थविकल्प होता है । ये निम्न तथा दुर रूप ही प्रधान हो जाते हैं । तथा—यही ने 'हस्तिक' शब्द का प्रयोग भक्त व अर्थ में किया है, अब अशुभों का भाव उसमें समा गया है । संस्कृत का 'शुभ्र' शब्द 'शुप्' धातु में बना है जिसका अर्थ पालना या छिपाना है पर इसका प्रयोग अब 'पूणा' अर्थ में किया जाता है । पहले सत् और अमत् का अर्थ विद्यमान और अविद्यमान होता था, परन्तु अब भला-बुरा या भूठ-मच्छ हो गया है । काम-शान्ध में प्रयुक्त होने के कारण संस्कृत के सहवाम, प्रमग, समागम, भोग आदि शब्द सकीर्ण बन गए हैं और उनके अर्थ में अदलीलना के कारण अपवर्ण हो गया है । कभी-कभी तमम शब्द ठीक अर्थ में प्रयुक्त होता है पर उससे निम्न तद्भव शब्द का अर्थविकल्प हो जाता है, यथा 'गाभिन्', 'यन्' संस्कृत शब्द 'गभिणी' और 'स्तन' से निकले हैं पर इनका प्रयोग मानव के लिए न होकर पशुओं के लिए होता है । जैन साधुओं के लिए 'नान', 'मुचित' तथा 'पापश्री' का प्रयोग आदर के लिए होता था, पर उनका तद्भव रूप नगा,

बुच्चा, पाखण्डी' का प्रयोग नीच, कपटी तथा पाखण्डी के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार, वावूगीरी, यारी, दोस्ती, महाराज, महाजन का अर्थपाक हुआ है।

६. अर्थापदेश—यह अर्थादेश के विपरीत है। इसमें अप्रिय तथा अमंगल सूचक बातों को प्रिय तथा सुन्दर ढंग से कह दिया जाता है। जिससे उनका दोष कम हो जाता है तथा अशोभन में शोभन तथा भयानकता में सुन्दरता दिखाई देती है। चेचक रोग के लिए माता, देवी का प्रयोग इसी का उदाहरण है। विधवा होने के स्थान पर—मिन्दूर पुँछ गया, चूड़ी टूटना, सिन्दूर छुटना आदि शब्दों का शोभनता के लिए व्यवहार किया जाता है। स्वर्गवास होना, परलोक सिंघारना तथा दिवगत होना शब्दों का प्रयोग किसी व्यक्ति की मृत्यु पर आदर के लिए किया जाता है।

७. अर्थ भेद—जब किसी शब्द का अर्थ परिवर्तित होकर अन्य भाषा में भिन्नता धारण कर लेता है वही अर्थ-भेद होता है। यह अर्थ में भेद की प्रक्रिया अनायास ही बिना कारण के प्रयोग द्वारा हो जाती है।

उदाहरण के लिए—संस्कृत शब्द 'धर्म्य' हिन्दी भाषा में 'धाम' बन गया जिसका अर्थ धूप है पर बंगला भाषा में पढ़चने पर इस शब्द का अर्थ 'पीनता' हो गया। हिन्दी सहन = बर्दाश्त तथा अरबी में आगिन, संस्कृत में कुल = परिवार तथा अरबी कुल = समस्त के अर्थ में आता है।

८. अर्थ का मूर्तिकरण तथा अमूर्तिकरण—मूर्त भाव कभी-कभी अमूर्त या सूक्ष्म तथा भाव रूप में परिवर्तित हो जाता है जिसके कारण अर्थ में विचार हो जाता है। 'स्वाभिमान की रक्षा के लिए गज भर कलेजे की आवश्यकता है', इस वाक्य में कलेजे का अर्थ हृदय न होकर 'साहस' है। इसमें स्थूल अर्थ में सूक्ष्मता का समावेश हो गया है। इसके विपरीत कभी शब्द का अमूर्त अर्थ मूर्त हो जाता है। वह अर्थ भाव, क्रिया, गुण को त्याग कर किसी पदार्थ या द्रव्य का बोध कराने लगता है। मीठा और नमकीन भाववाचक होकर कभी-कभी मिठाई के रूप में प्रयुक्त होकर मूर्त रूप धारण कर लेते हैं। रोटी मूर्त होते हुए भी जीविका का अर्थ देती है।

९. रूपक—इसमें भाषा का आनन्दार्थक प्रयोग आता है। रूपक



का अधिकांश प्रयोग किया जाता है। जैसे—वह पत्राव-केसरी है, वह तो गधा है।

१०. अनेकार्थता—एक ही शब्द प्रसंग के अनुसार अनेक अर्थों का बोध कराता है। कभी वह सीमित अर्थ में प्रयुक्त होता है कभी व्यापक अर्थ में। कभी प्रधान अर्थ के साथ अनेक अर्थ भी सम्बद्ध हो जाते हैं। जैसे पत्र शब्द में पत्र, पक्षपात, पात्र (कृष्ण पक्ष शुक्ल पक्ष) आदि का ज्ञान होता है। जैसे जड़ शब्द मूल के अर्थ में ( पड़ की जड़ ) आता है तथा उसका प्रयोग आशय तथा कारण के भाव में भी होता है यथा रोग की जड़ भगड़ की जड़।

नोट—अथ परिवर्तन की छ से दस तक की दिशाएँ प्रायः पूर्व दिशाओं के अन्तर्गत ही आ जाती हैं। मरुट वान क निग यश इनका उन्नेय कर दिया गया है।

प्रश्न १६—शब्दार्थ में परिवर्तन होने के मुख्य कारण क्या हैं? उपयुक्त उदाहरण देकर अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए।

मनुष्य विवेक तथा चिन्तनशील प्राणी है। उसके अन्तर्गत तथा भाव की अभिव्यक्ति भाषा में परिवर्तित होती है। भाषा का प्रभाव यह है। अतः भाषा में शब्दार्थ मानव-मनावृत्ति के अनुरूप परिवर्तन होता रहता है। मानव-विचारों में एक प्रकार की अभिवृत्ति, तथा अनेकरूपता वर्तमान रहती है। इस अभिवृत्ति तथा अनेकरूपता का प्रभाव भाषा तथा उसके अर्थ पर पड़ता है। इस प्रभाव के कारण अर्थ में परिवर्तन आ जाता है। मानव की मानवीयता पर बाह्य अनेक प्रकार की परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। मानव तथा शब्दार्थ इस सब बातों में साक्षित तथा परिवर्तित रहते हैं। अतः शब्दार्थ में विकार पैदा करने में एक साथ अनेक कारणों का भी भूत होता है। य कारण कभी पृथक् तथा कभी समीकृत रूप में प्रयुक्त हो सकते हैं। इस कारण कभी अर्थों का विकास होता रहता है। अतः शब्दार्थ-परिवर्तन अनेक कारणों से होता है।

५।१।१

शब्द का अक्षरत्व—किसी शब्द के उच्चारण में जब एक विशिष्ट ध्वनि

पर बल दिया जाता है तो उस शब्द की अन्य ध्वनिया उपेक्षित होकर निर्वन्त हो जाती है तथा धीरे-धीरे लोप होने लगती है यथा उपाध्याय के 'भा' ध्वनि का रूप इसी बलापसरण का फल है। इसी प्रकार किसी शब्द के अर्थ के प्रधान पक्ष से हट कर बल अन्य पक्ष पर पड़ जाता है तो धीरे-धीरे वही अर्थ प्रमुख हो जाता है और प्रधान अर्थ हट जाता है।

उदाहरणार्थ—गोस्वामी का अर्थ 'गायो का स्वामी' था। गायो के स्वा-मित्व तथा सेवा की भावना से धर्म के सम्मिश्रण से इसका उत्तर अर्थ 'माननीय धार्मिक व्यक्ति' हो गया और सन्तो के लिए इसका प्रयोग हुआ। अरबी शब्द 'गुलाम' तथा अंग्रेजी का 'नेव' (knave) का अर्थ लडका था परन्तु दाम-प्रथ पर बल अपसरण के कारण इनका अर्थ सेवक तथा शरारती हो गया। 'जुगुप्सा' को पालन करने से घृणा करने के अर्थ में इसी कारण से आया।

२. पीढ़ी-परिवर्तन—मानव कभी भी पूर्ण तथा शुद्ध रूप में अनुकरण करने में अममर्थ रहा है। शब्द की ध्वनि या अर्थ में कुछ न कुछ अन्तर अवश्य पड़ जाता है। नई पीढ़ी के लोग पुरानी पीढ़ी के शब्दार्थों का अनुकरण करते समय अनेक त्रुटियाँ कर बैठते हैं। हमारे पूर्वज पहले पत्तों पर लिखते थे। बाद वाली सन्तति ने लिखित सामग्री को पत्र समझ लिया और भोजवृक्ष को छाल पर लिखने के कारण उनको भोजपत्र के नाम में पुकारा। आज भी सुवर्ण और रजत पत्र होते हैं। धीरे-धीरे पत्र पतलेपन का सूचक बन गया। तेल और कुशल (कुना खाने में चतुर) के अर्थ का इसी तरह का इतिहास है।

३. वातावरण में परिवर्तन—वातावरण में परिवर्तन में अर्थ-विकार हो जाना है। भौगोलिक वातावरण के परिवर्तन से अर्थ भी बदल जाते हैं। जैसे अंग्रेजी शब्द Corn नामान्य रूप से धन्न के लिए प्रयुक्त होता है परन्तु अमेरीका में यह मक्का का वाचक है। प्राचीन वैदिक ऋचाओं में 'जष्ट्र' का प्रयोग 'जगती बेल' के लिए होता था परन्तु बाद में ऊट के लिए होने लगा।

शब्दार्थ में परिवर्तन का कारण सामाजिक वातावरण भी है। गिरजा-घर में उपदेशिका के लिए Mother और अस्पताल में नर्स के लिए Sister का अर्थ माता और बहिन से भिन्न होता है। व्याख्यान-शाला के लिए भाई, नर्स का अर्थ ही अर्थ गृहीत है। तौकिर प्रयाण तथा रीति-रिवाज में परि-



कभी-कभी धरा दीना छिपाने के लिए शब्दों का व्यवहार किया जाता है। मानव-वृत्ति शब्दों की अभिरामता में अधिक घातपित हो जाती है। पागलाना जानें को—बाहर खड़ा, सोव जाना तथा दिना जाना घोर निवृत्त होना आदि कहा जाता है। गम्भीर होने को—‘वाँच भारी होना’ तथा पंगाव को ‘बापसूम’ तथा ‘नयुगला’ कहा जाता है।

बटुआ या भयङ्गना को छिपाने का भी मानव प्रयत्न करना है।

उदाहरणार्थ—‘बेचक’ को देखो या माना गया है या में कै-इतल होने को ‘मुह घोर पेट चलना’ कहा जाता है ‘बेचक’ में गर्मों अधिक होने को ‘गोचला’ कहा जाता है। कभी कभी गद या छोटे कार्यों को भी मधुर शब्दों के द्वारा प्रिय बना दिया जाता है। भगो को जमादार या मेहतर (महतर) तथा पागलाना शाफ करने को ‘कमाना’ कहा जाता है। पञ्जारी में नाई को राजा कहा जाता है। भगिन को महतरानी तथा रमोइए को महाराज या टाहुर कहा जाता है। इन प्रकार की भावना में शब्दों के अर्थों में परिवर्तन हो जाता है।

७. ध्याय—ध्याय के कारण शब्दार्थ में विकार अर्थात् अन्तर्गत होता है और आगे उन शब्दों का नवीन अर्थ ही प्रचलित हो जाता है। मूल के अर्थ में ‘पूरे पण्डित’, ‘पूरे देवता’, ‘दिमाग का पूरा’, ‘अकल का सजाना’ आदि शब्द चल पड़े हैं। ‘पूरे हरिश्चन्द्र के अवतार’ अमृत्यवादी तथा ‘लक्ष्मी के पति’ दीन व्यक्ति के लिए व्याम्वर में प्रयोग किया जाता है।

८. व्यक्तिगत योग्यता—शब्द का अर्थ भावना पर भी अधिकांशतः टिका रहता है। एक व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत सामर्थ्य तथा भावना के अनुसार भाषा का अर्थ समझता है। उदाहरणार्थ ‘शून्य’ शब्द का अर्थ दार्शनिक के लिए कुछ और एक वैज्ञानिक के लिए कुछ और तथा एक गणितज्ञ के लिए कुछ और ही होगा। शब्दों में अर्थ का अनिश्चय होने पर ही एक शब्द का भिन्न-भिन्न अर्थ दिया जाता है। ‘कर्तव्य’ के अर्थ की एक निश्चित सीमा न होने से इसके अर्थ में भी भेद हो जाता है। इसी प्रकार के शब्द पाप, पुण्य, धर्म और कर्म हैं।

९. भाषादेश—भाव-शक्तता या आधिक्य से शब्दों के अर्थ में एक

विशेषता आ जाती है और अर्थ में परिवर्तन आ जाता है। क्रोध के आवेग में आकर शब्दों का विविध अर्थ में प्रयोग होने लगता है। क्रोध में उच्चरित शब्द 'बच्चू' बच्चा का वाचक शब्द न होकर तुच्छता का प्रतीक बन जाता है। उसी प्रकार 'राक्षस' और 'पाजी' में एक प्रकार की हीनता का भाव रहता है। स्नेहातिशय में भी कठोर शब्द में प्रेम तथा स्नेह का भाव परिलक्षित हो जाता है। पिता का प्रेम के आवेग में पुत्र को 'पाजी' गदहा, दुष्ट पगवा तथा 'दीतान' कहना बुरे अर्थ में प्रयुक्त न होकर पुत्र की चपलता आदि गुणों का छोनक होता है।

१०. भाषान्तर—जब एक शब्द एक भाषा में अन्य भाषा में प्रविष्ट होता है तो उसके भाव या अर्थ में थोड़ा-बहुत अन्तर अवश्य आ जाता है। जैसे—फारसी में मुंग का अर्थ 'पक्षी' है पर हिन्दी में एक पक्षी विशेष का नाम है। यहाँ अर्थ-संकोच हो गया है। फारसी का नदी वाचक 'दरिया' शब्द गुजराती समुद्र का अर्थ देने लगा। मस्जिद का 'मीन' शब्द गुजराती में 'मीनों' बनकर हरे रंग का छोनक हो गया। हिन्दी की बाटिका (बगीचा) बंगाली में बाड़ी (घर) बन गया।

११. भावों की स्पष्टता के लिए छलकार-प्रयोग—अर्थ शास्त्र के मनीषी लोग यह कहते हैं कि वाक्यांशों के अन्तर्गत अर्थ-परिवर्तन एक क्षण में हो जाता

प्रधान होगा। 'वचन' शब्द मांसी को ध्वन्य धर्म तथा विद्यार्थी को 'लेखनों' का धर्म देता है। मही ध्वन्यधा गोनी की है।

१३. शब्दों का सक्षिप्त प्रयोग—धर्म-परिवर्तन में भी 'प्रत्यय-नापव' काम करता है। वचन शब्दों में अधिक धर्म की व्यञ्जना हो जाती है। एक सं शब्द प्रयोग में छूट जाते हैं; यथा 'रेनगाड़ी' से 'रेन' रेनवे स्टेशन में 'स्टेशन' तथा माइति रचना में 'रचना' हो गया।

१४. पुनरावृत्ति—कभी-कभी शब्दों के दुहरा प्रयोग चलने से धर्म-परिवर्तन हो जाता है। ध्वन्य 'मनयागिरि पर्वत' द्रविड भाषा में मनय पर्वत को कहते हैं, मसृज में गिरि का धर्म भी पर्वत है। ध्वन्य इसके द्वित्व प्रयोग से मनयागिरि एक पर्वत का नाम समझ गया। इसी प्रकार का प्रयोग विष्णुचल और हिमाचल पर्वत के प्रयोग में भी है।

१५. किसी शब्द में विशेषता का प्राप्ताभ्य—कम्प्युनिस्ट लाल भण्डा की विशेषता है 'लाल भण्डा' नाम से पुकारे जाते हैं। लाल-पगड़ी और गांधी टोपी का धर्म सिपाही तथा कांग्रेसी व्यक्ति के लिए बहुत पहने से चल रहा है। इन प्रकार ध्वन्य का धर्म-विकार हो जाता है।

प्रश्न १७—संस्कृत ध्वनि-समूह का वर्गीकृत परिचय देकर यह बताइए कि हिन्दी-ध्वनि-समूह से उसकी तुलना में क्या मुख्य परिवर्तन हुए हैं ?

### प्रत्यय

हिन्दी ध्वनियों के विकास पर एक लेख लिखिए।

हिन्दी ध्वनियों का विकास-क्रम वैदिक युग से ही हमें उपलब्ध होता है। अतः हिन्दी ध्वनि-समूह का मूलधार प्राचीनतम वैदिक ध्वनि-समूह ही है। यह वैदिक ध्वनि-समूह ही पाली, प्राकृत एवं अनभ्र श के ध्वनि-समूह में प्रवाहित होता हुआ ईपत् परिवर्तन के साथ आज हिन्दी ध्वनि-समूह के रूप में विकसित हो गया है।

वैदिक ध्वनियों—प्राचीनतम ध्वनियों का रूप हमें वैदिक ध्वनियों में ही मिलता है। वैदिक ध्वनियों की संख्या ५२ है, इनमें १६ स्वर और ३६ व्यञ्जन हैं—

स्वर—मूल स्वर ६ है—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ए, औ ।

संयुक्त स्वर ४ हैं—ए (अइ), ओ (अउ), ऐ (आइ), औ (आउ) ।

व्यंजन—स्पर्श व्यंजन २४ हैं—कठ्य—क ख ग घ ङ ।

तालव्य—च छ ज झ ञ ।

मूर्धन्य—ट ठ ड ढ ण ।

दन्त्य—त थ द ध न ।

घोष्ठ—प फ ब भ म् ।

अन्तस्थ ६ है—य (इ), र, ल, व, ळ, ऴ ।

षोड ऊष्म ६ है—श ष स ।

विगर्ग = (ह)

(त्रिह्रामूलीय) = (उपध्मानीय)

मघोष ऊष्म १ है—ह

एक गुण अनुस्वार—(ँ)

प्रायः प्राचीन काल की बहुत सी ध्वनियों के उच्चारण में विभिन्नता पाई गई है। उनमें अनेक परिवर्तन तथा विचार हो गये हैं। बहुत सी ध्वनियाँ तो गुप्त हो गई हैं। उदाहरण के लिए ऋक्सप्रतिशास्य में 'ऋ' का उच्चारण पस्य माना गया है, वही-वही मूर्धन्य स्वर के रूप में भी उल्लेख किया गया है परन्तु 'ऋ' का उच्चारण वलये की स्पर्श पर होने लगा। बेंटर्जी के अनुसार 'ल' (जैसे बर्तुर्मे) का उच्चारण अमेरिकी के Little (लिटिल) के समान है। वैदिक काल में चतुर्थीय ध्वनियाँ प्राधुनिक ध्वनियाँ की तरह सदा मधुरी न होकर केवल सदा ही थीं। 'ळट्' ध्वनि 'ळ' का महाप्राण है। त्रिह्रामूलीय का उच्चारण 'य' तथा उपध्मानीय का 'प्र' के समान था। जैसे 'क' के पूर्ववर्ती विभक्त का क्पान्तर त्रिह्रामूलीय तथा 'प' के पूर्ववर्ती विभक्त का क्पान्तर उपध्मानीय था। बाद में अनेक परिवर्तन आ गये। ध्वनि-शास्त्र के अनुसार वैदिक ध्वनियों का वर्गीकरण निम्नरूप से अनुष्ठान किया जा सकता है—

पद-	विषय	प्रमाण	प्रमाण	प्रमाण	प्रमाण
पद ५	प्रमाण	प्रमाण	प्रमाण	प्रमाण	प्रमाण

42 2.1

स्वरसंज्ञा	अक्षर	मूर्धन्य	नालम्ब	कक्षर	स्वरसंज्ञा
स्पर्श धनप्राण	प य	त द	ट ड	ष ज	क ग
स्पर्श महाप्राण	फ भ	थ ध	ठ ड	छ झ	ख घ
अनुनासिक	म	न	ण	ज	ङ
पाश्चिमे धनप्राण		ल	व		
" महाप्राण			व ह		
उन्निष्पन्न		र	प		
सवर्ण	उपध्मानीय	स		श	जिह्वा-
मूर्ध स्वर	उ (व)			इ (य)	मूलीय
					: ह

पाली तथा प्राकृत की ध्वनियाँ—कुछ वैदिक ध्वनियों का लोप पाली में हो गया है, लोप ध्वनियों का प्रयोग यथावत् होता है। ऋ, ॠ, ए, ऐ, औ, अं, अः, प्रचोप है, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय इन दस ध्वनियों का प्रयोग पाली में होता है। साथ ही ह्रस्व 'ए' और ह्रस्व 'ओ' दो नवीन ध्वनियों का आगमन पाली में हो गया है। इसमें केवल सकार का प्रयोग किया जाता है। इसमें विसर्ग का भी प्रयोग नहीं होता है।

पाली तथा प्राकृत भाषाये ध्वनियों की दृष्टि से प्रायः समान है। मागधी के अनिश्चित अन्य प्राकृतों में य् और झ् का प्रयोग नहीं होता है। मागधी में 'स्' के स्थान पर भी 'श्' का प्रयोग मिलता है। अशोक के पश्चिमोत्तरीय शिलालेखों प्राकृत में 'प्' भी मिलता है।

हिन्दी ध्वनि-समूह—हिन्दी-ध्वनि-समूह की अधिकांश ध्वनियाँ परम्परागत रूप से प्राकृत भाषाओं से आई हैं। कुछ ध्वनियों का विकास













रागू का मे घा । सभी स्वरों के ये दोनो रूप समान हैं । साधारण स्वर अनुनासिक रहित होते हैं ।

(६) स्वरतन्त्रियों की स्थिति में पर्यन्त के कारण बन्धन होने से जो स्वर निकलते हैं उन्हें घोष कहते हैं । पर्यन्त-हीन स्वरध्वनि को अघोष कहते हैं । प्रायः स्वर घोष होते हैं । अवधी में अ, इ, ए के अघोष रूप भी मिलते हैं इ ई आदि ।

(७) उच्चारण करते समय मुखविषय की मांसपेशियाँ तथा अंग कभी कभी कठोर होते हैं और कभी शिथिल अतः ये भी इस दृष्टि से शिथिल (Lax) और दृढ़ (Tense) कहे गये हैं । अ, इ, उ शिथिल हैं तथा ई, ऊ दृढ़ । ए आदि ध्वनियाँ दोनों की मध्यवर्ती हैं । कण्ठ-पिटक और चिबुक के बीच उँगली रखने से शिथिलता और दृढ़ता का अनुभव हो जाता है ।

(८) कुछ स्वर मूल (Monophthong) होते हैं तथा उनके उच्चारण में जो भी एक स्थान पर रहती है; जैसे अ, ई आदि । कुछ संयुक्त स्वरों Diphthongs में एक स्वर से दूसरे स्वर तक जाती है । यथा अवधी में अ ए (ऐ) अ ओ (औ) आदि ।

व्यंजनों का वर्गीकरण—व्यंजनों का वर्गीकरण उच्चारणोपयोगी अवयवों के अनुसार और उच्चारण भी रीति के अनुसार किया जाता है । इन्हीं को क्रमशः स्थान और प्रयत्न कहा जाता है । स्थान के आधार पर व्यंजनों के निम्नलिखित भेद हैं—

१. काकल्य या उरस्य (Glottal या Laryngeal)—यह काकल स्थान से उत्पन्न ध्वनि है । यथा—हिन्दी का 'ह' ।

२. जिह्वामूलोय (Uvular)—यह जिह्वामूलक या जिह्वापश्च से उच्चरित होती है । जैसे ऊ, ए, ग आदि । फारसी के प्रभाव से ये हिन्दी में भी बोली जाती हैं ।

३. कंठ्य (Guttural)—कंठ तालु का अन्तिम कोमल भाग है और उसके उत्पन्न ध्वनि को कंठ्य कहा जाता है । जब जिह्वा मध्य कोमल तालु (Soft-palate) का स्पर्श करता है । जैसे क, ख, ग, घ, ङ ।



४. पार्श्विक (Lateral)—इन ध्वनियों में हवा मुँह के मध्य में रुक जाने में जीभ के प्रगत-वर्णन या पार्श्व में बाहर निकलती है, यथा 'ल' ।

५. मुष्ण (Rolled)—जीभ को गुरु को कुछ देतन की तरह लटका या मुष्ण करके पार्श्व या तानु का स्पर्श करके यह ध्वनि उत्पन्न की जाती है । इसे सोझि भी कहते हैं, जैसे 'र' ।

६. उल्लिख्य (Flapped)—जीभ को लपेट कर तानु के किसी भाग पर भटके से पीट करने पर तथा उसके हटने पर यह ध्वनि उत्पन्न होती है, जैसे 'ड, ढ' ।

७. अर्धस्वर (Semi-vowel)—इनके उच्चारण में वायु का प्रवाह बहुत धीमा होता है । ये एक प्रकार से स्वर और व्यञ्जन के मध्य की ध्वनियाँ हैं । जैसे य (इ), व (उ) ।

ध्वनि-वर्गीकरण के सिद्धान्त

स्वर-तन्त्रीय प्रसरण—इसके अनुसार ध्वनियों के दो भेद हो सकते हैं, घोष और अघोष । हिन्दी ध्वनियों में सभी स्वर, क-वर्ग आदि पाँचों वर्गों की अन्तिम तीन ध्वनियाँ (ग घ ङ, ज झ ञ आदि) य र ल व ह ख ग आदि घोष हैं । शेष सभी अघोष हैं ।

प्राणत्व के आधार पर—श्वास-बल के आधिक्य या कम होने पर उच्चरित ध्वनियाँ दो प्रकार की हैं—अल्प-प्राण तथा महाप्राण । जिनमें 'ह' की ध्वनि मिलती है ऐसे व्यञ्जन महाप्राण होते हैं, जैसे—ख, घ, छ, झ, ठ, ड, ध, ढ, न्ह, फ, भ, म्ह, रह, ल्ह, ङ आदि । शेष अल्पप्राण है ।

आम्प्यन्तर प्रसरण—(Degree of openness)—इसके अनुसार ध्वनियों के स्वर और व्यञ्जन दो भेद हो जाते हैं । इसके पश्चात् स्वर के अग्र, पद्व, मध्य तथा सवृत, अर्द्ध-सवृत, अर्द्ध-विवृत और विवृत भेद हो जाते हैं । दूसरी ओर व्यञ्जन के स्पर्श, सघर्ष, अनुनासिक, पार्श्विक, लुण्ठित उल्लिख्य और स्पर्श सघर्ष भेद होते हैं । इनका वर्णन ऊपर कर दिया गया है ।

उच्चारण-स्थान—इस दृष्टि से स्वरयन्त्रमुखी, जिह्वामूलीय, कण्ठ, मूर्धन्य, तालव्य, वरस्य, दन्त्योष्ठ्य और द्योष्ठ्य आदि भेद हो जाते हैं ।

अनुनासिकता—इस प्रकार वर्णों के तीन





हाना; घनि=भी घागाना=घमाना ।

(ख) मध्य स्वर लोप (Syncope)—इसका प्रयोग अधिकतर उच्चारण में होता है, यथा गरबूत=छूँड़, इसमी=इसी, तपभन=तपन, बरदेव=वसदेव, do not=don't ।

(ग) अन्त्य स्वर लोप—धीरे-धीरे हिन्दी के शब्द के अन्त्य स्वर का लोप हो जाता है और वे व्यञ्जनान्त होने जा रहे हैं। यथा—रान=रान्, निना=मिन, ग्राम=ग्राम् अन्त्य रूप—निश (म०)=नीद, जाति=जाउ, शरव=शाम आदि ।

(घ) आदि व्यञ्जन लोप—ध्वनिवां के ये रूप अधिकतर हिन्दी तथा प्राकृतों में पाये जाते हैं जिनमें ससृज शब्द के आदि व्यञ्जन का लोप हो गया है । उदाहरणार्थ—म्कष = कषा, स्थान=थान, स्थाली=पाली, दन्शान=मशान, knife=nife ।

(ङ) मध्य व्यञ्जन लोप—प्राकृत तथा हिन्दी ग्रामीण बोलियों में यह लोप अधिकतर दृष्टिगत होता है, यथा बचन=बमन, प्रिय=पिम, नमिणी=गमिन, कातिक=कातिक, उपास=उपास, डाकिन=डाइन, घरदार=घरवार, कोकिल=कोइल ।

(च) अन्त्य व्यञ्जन लोप—इसके उदाहरण कम मिलते हैं । जैसे—ग्राम=ग्राम्, उष्ट्र=ऊँट, सत्य=सत् ।

(छ) आदि अक्षर लोप—यहाँ अक्षर का अर्थ स्वर और व्यञ्जन का योग है । जब दो समान अक्षरों के एक साथ आने पर प्रायः एक का लोप हो जाता है । जैसे विशूल का शूल, university=varsity आदि ।

(ज) मध्य अक्षर लोप—भाण्डागार=भंडार, गेहूँ चना=गोचना, दस्तखत=दस्त ।

(झ) अन्त्य अक्षर लोप (Apocope)—मौक्तिक=मौली, सपादिक=सपा, माता=माँ, निम्बुक=नीबू तथा भानूशया=भावज ।

(ञ) समाक्षर लोप (Haplology)—अमेरिकन भाषा-विज्ञानी ब्लूमफील्ड के मतानुसार इसका अर्थ है 'एक को जानना' । इसका अर्थ है कि शब्द में एक ही ध्वनि, अक्षर या अक्षर-समूह के



रग = रगत्, परवा = परवाह; कल = कल्ह ।

भादि-प्रक्षरागम—गु जा = घुं गुची (भोजपुरी) ।

मध्य-प्रक्षरागम—खल = खरल, भालम = भालकंस ।

अन्त-प्रक्षरागम—आंख = आंखड़ी, जीभ = जीभड़िया, बधू = बधूटी, आंक = आंकड़ा आदि ।

३. वर्ण-विपर्यय (Metathesis)—इसे 'वर्ण-व्यत्यय' भी कहते हैं। कभी-कभी स्वर, व्यंजन तथा अक्षर किसी शब्द में परस्पर ध्वनि-विनिमय या स्थान परिवर्तन कर लेते हैं, उसे वर्ण-विपर्यय कहते हैं। जैसे 'अमरुद' से 'अमरूद'। जब पास-पास की ध्वनियों में विपर्यय होता है तो पार्श्ववर्ती कहलाता है। अन्यथा दूरवर्ती ।

पार्श्ववर्ती स्वर-विपर्यय—इण्डो भाषा में lie = lei (बनाना) ।

दूरवर्ती स्वर-विपर्यय—कछु = कुछ; पागल = पगला; बिन्दु = बूंद, आदि ।

पार्श्ववर्ती व्यंजन-विपर्यय—ब्राह्मण = बाम्हन, सिग्नल = सिगल; बिहू = बिन्ह ।

दूरवर्ती व्यंजन-विपर्यय—महाराष्ट्र = मरहठा, वाराणसी = बनारस; तमगा = तगमा ।

पार्श्ववर्ती अक्षर-विपर्यय—मतलब = मतवल, बफर (अवेस्ता) = बरफ (फारसी) ।

दूरवर्ती अक्षर-विपर्यय—लखनऊ = नखलऊ, नारिकेल = नालिकेर, चाकू = काबू ।

शब्दाक्षर-विपर्यय—दो शब्दों के आरम्भ के अक्षरों में विपर्यय हो जाता है। जैसे चूल्हा-चोका = चौल्हा-चूका ।

४. समीकरण (Assimilation)—इसे सादृश्य, सावर्ण्य भी कहते हैं। इसमें स्वर या व्यंजन एक दूसरे को प्रभावित कर सजातीय वर्ण बना लेते हैं। इसके दो भेद होते हैं—पुरोगामी और परचगामी। प्रत्येक पार्श्ववर्ती दूरवर्ती में दो प्रकार का होता है।

हो गया है। पार्श्ववर्ती पुरोगामी समीकरण में 'स्वनि' प्रत्यय का प्रभाव डालती है। प्राकृत में इस प्रकार की स्वनियों की परिचय है।  
 चक=चक, लभ=लभ, चम=चम, चम=चम, चम=चम। इनमें चक  
 ध्वनि दूसरी ध्वनियों को प्रभावित करती है। इससे पदचगामी  
 में परध्वनि पूर्व ध्वनि की प्रभावितता का स्पष्टीकरण हो जाता है।  
 तथा—अरकट अरकट, जीर=जीर, पाक=पाक, पाक=पाक, पाक=पाक।  
 पाप-पाप की ध्वनियों में परिवर्तन होता है। इससे पदचगामी  
 (दुग्ध), मय=मय।

व्यजन के प्रतिस्विकरणों में भी इस प्रकार का परिवर्तन पाया है।  
 पार्श्व-पुरोगामी उदाहरण मृज्ज मृज्ज मृज्जी = मृज्जी तथा दृज्ज मृज्जी  
 के प्राह्ण=प्राह्ण आदि है। उसी प्रकार दृज्ज पदचगामी में—ध्रुग्वि—  
 इक्षु=उक्षु तथा पार्श्व-पदचगामी समीकरण में—भाज्जनी में जीजना में ख  
 मझलह का 'ख' इझलह हो जाता है।

पारस्परिक व्यजन समीकरण (Mutual Assimilation)—मे दो पार्श्व-  
 वर्ती व्यजनों के पारस्परिक प्रभाव डालने के कारण दोनों ही परिवर्तित हो  
 जाते हैं और एक तीसरा व्यजन वहाँ आ जाता है। उदाहरणार्थ—मय=  
 सब, विष्णुन=विष्णुनी, बुडि बुभ वाड बाजा, कतरिका=कतराणी आदि।

५ विपरीकरण (Dissimilation)—यह समीकरण का विपरीत रूप  
 है। इसके व्यजन तथा स्वर का भेद है। व्यजन के पुरोगामी विपरीकरण में  
 प्रथम व्यजन ज्यों का त्यों रहता है और दूसरा परिवर्तित हो जाता है, यथा—  
 वाक=वाक, लागूनी=लगूर, ककण=ककण, Marmor (मैर्मर)=  
 Marble इसी के पदचगामी रूप में प्रथम व्यजन में परिवर्तन होता है।  
 दरिद=दरिद, स्वरों के पुरोगामी विपरीकरण में—रिजक=  
 टिकली, पुरप=पुरिस मिलता है तथा पदचगामी विपरीकरण में—तुार=  
 नेउर, मुकुट=मउर, मुकुन=वउर।

६ सभी धी-एकीभाव—संज्ञित विचारों का प्रति-विचार में एका  
 महत्व है। कुछ व्यजन (व, क, य, म आदि) उच्चारण में स्वर के साथ जान  
 के कारण वे स्वर में बदल जाते हैं और अपने पूर्ववर्ती व्यजन में मिल जाते हैं।  
 उदाहरणार्थ—धामर=धंवर धंउर धोर मयन=नहन - नैन, धन





सामग्री के अध्ययन में निम्न कारणों पर प्रकाश पड़ा है और भागे पड़ नी सरना है।

१. शारीरिक या वाक्यन्त्र की विभिन्नता—शारीरिक या वाक्यन्त्र की विभिन्नता से ध्वनियों में भेद पैदा हो जाता है। शारीरिक अवयव तथा सस्थान की दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति में अन्तर है। साथ ही मस्तिष्क की मुक्ता या लब्धता के आधार पर मानव की विभिन्न तथा विवेक शक्ति पृथक्-पृथक् होती है। एक विद्वान के विचार करने की इसाई अशिक्षित या मूर्ख व्यक्ति से भिन्न होती है। इतना ही नहीं व्यक्ति के वाक्यन्त्र की रचना तथा सामर्थ्य में भी विभिन्नता है। वाक्यन्त्र सर्वत्र रंग, काल और स्थान से नियन्त्रित रहता है। यही कारण है कि संस्कृत के 'स्' का उच्चारण बंगाली में 'श्' और ईरानी में 'ह्' हो गया। यह रहा बोलने का क्रम। श्रवणेन्द्रिय में एक उच्चरित ध्वनि के श्रवणकार्य में भी अन्तर आ जाता है। जैसा हम एक विशिष्ट ध्वनि को सुनते हैं वैसा उच्चारण नहीं कर पाते। अतः ये अन्तर कालान्तर या सदियों के पश्चात् अध्ययन करने पर प्रत्यक्ष अनुभव किये जा सकते हैं। सहज और स्वाभाविक रूप से ध्वनियों का उच्चारण ध्वनियों में विकार पैदा कर देता है। फलतः भाषा या पद में आगम, लोप आदि हो जाते हैं।

२. अनुकरण की अपूर्णता तथा अज्ञानता—वाक्यन्त्र और श्रवणेन्द्रिय बीच की कड़ी अनुकरण की प्रवृत्ति है। किसी व्यक्ति के उच्चारण का व्यक्ति पूर्ण अनुकरण नहीं कर पाता, या तो वह भाग बढ जाता है या पीछे जाता है। इसी कारण ध्वनियों में अन्तर आ जाता है। अनुकरण की अपूर्णता प्रायः बच्चों में अधिक स्पष्ट होती है। वह रोट्टी को 'लोटी' तथा चीज 'बिज्जी' कहता है। बड़ा होने पर यह भेद सूक्ष्म रूप में बना रहता है अ इसका स्पष्ट रूप विदेशी ध्वनियों के अनुकरण में मिलता है। आहारण व 'ब्राह्मण' तथा कनेक्शन का 'कन्स्कन' इसी कारण होता है। इस अनुकरण व अपूर्णता में अज्ञानता का भी पर्याप्त योग रहता है। किसी ध्वनि के विनिर्दिष्ट या शुद्ध-ज्ञान के उच्चारण का ठीक अनुकरण नहीं हो पाता और एक-दूसरे ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता है। अनरिचिन तथा विदेशी शब्दों में यह विकार विशेष रूप से होता है। लोक-भाषा में 'धोवरवियर' का धोमेयर, कम्पाउण्डर का कम्पोडर हो गया है।





प्रयत्न-लाघव का क्षेत्र एकांगी न होकर सर्वांगी तथा विस्तृत है।

८. सादृश्य (Analogy) — ध्वनियों को स्मृतिग्राह्य तथा अपवाद-होने बनाने का श्रेय सादृश्य को है। सुगमता के उद्देश्य में अन्य ध्वनि की समानता तथा सादृश्य पर अन्य ध्वनि को ढाल लिया जाता है। यथा द्वादश के सादृश्य पर एकदश भी एकादश तथा तैंतीस के सादृश्य पर सैंतीस में अनुनासिकता म गई है। स्वर्ग की समानता पर नरक 'नरक' हो गया है।

९. बलाघातक और सगीतात्मकता — ये दोनों भी ध्वनि-विकार के कारण हैं। शब्द की किसी ध्वनि पर अधिक बल देने से अन्य समीपवर्ती ध्वनियाँ कम और होकर लुप्त हो जाती हैं। यथा — आभ्यन्तर के मध्य में बल का आघात होने से 'आ' का लोप होकर 'भीतर' रह गया। इस प्रकार 'उपाध्याय' से 'भा' रह गया। आरोह-अवरोह के स्वर-क्रम से संगीत का स्वराघात सञ्चत तथा विवृत रूप धारण कर लेता है। इसी से 'इ' का 'ए' तथा 'उ' का 'ओ' हो जाता है, जैसे 'कुण्ड' का 'कोड़' 'बिल्व' का 'बेल' में सगीतात्मक स्वराधान की भूलक है।

१०. काव्य में मात्रा या तुक — कवि लोग अन्त्यानुशास या तुक तथा मात्रा के दृष्टिकोण से मनमाना परिवर्तन ध्वनियों में कर देते हैं। भक्तिकाल तथा रीतिकाल की कविता में यह प्रवृत्ति दर्शनीय है। विक्रमाल का विकरार, कमल = कमलु, हथियार = हथ्यार आदि उदाहरण मिलते हैं।

११. स्वभाविक विकास या परिवर्तन — इसको स्वयम्भू विकास भी कहते हैं। इसमें स्वाभाविक रूप से घिसकर शब्दों की ध्वनियाँ स्वयं विकसित हो जाती हैं।

उदाहरण — सर्प = सर्पि      मया = मैं  
कूप = कुर्पा      वर्तते = बाटे पारि।

१२. विदेशी ध्वनि का प्रभाव तथा प्रभाव — किसी भाषा में अन्य भाषा की विशिष्ट ध्वनियाँ न होने से अपनी भाषा की मिलती-जुलती ध्वनियों से उनकी पूर्ति कर ली जाती है। प्रपञ्ची की बरखें 'ट', 'ड' ध्वनियाँ हिन्दी की मूर्धन्य या शून्य में परिवर्तित हो गई; जैसे — एरोट' से 'एरड' तथा बरख से 'बरड'। प्रपञ्ची में निचे Gupta, Mura के प्रभाव से हिन्दी में गुप्त और 'मुर'। प्रपञ्ची में निचे Gupta, Mura के प्रभाव से हिन्दी में गुप्त और

मिश्र के स्थान पर गुप्ता, मिथ्या लिखा जाने लगा है। अतः इससे भी ध्वनि में विकार हो जाता है।

१३. भौगोलिक प्रभाव—यह भी ध्वनि विकार का एक कारण है। गर्म जलवायु वाले देशों में विवृत तथा ठण्डी जलवायु वाले देशों में संवृत ध्वनियों का अधिक विकास होगा। चारों ओर पर्वतों से घिरे प्रदेश की ध्वनियाँ स्थिर तथा बाहरी व्याघात में हीन बनी रहती हैं। इसी प्रकार पश्चिमी देश निवासी हिन्दी भाषा के दन्त्य वर्णों का उच्चारण नहीं कर सकते हैं। इसमें भौगोलिक परिस्थितियाँ काम करती हैं।

१४. सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव—सामाजिक माति में सांस्कृतिक नन्ति होगी तथा ध्वनि शुद्ध तथा परिमार्जित रहेगी। शुद्ध या विप्लव में होने की गति तीव्र हो जाती है और भाषण-क्रिया में कुछ ध्वनियों में अना-मक स्वरपाठ बढ़ जाता है तथा परिणामतः कुछ ध्वनियों का लोप हो जाता। और भाषा का विकास या ह्रास तीव्र गति से होने लगता है। मसाम में दुर्गम दातावरण से धीरे बोलने की प्रवृत्ति हो जाती है और संवृत ध्वनियों की ओर झुकाव हो जाता है। इन प्रकार ध्वनि-परिवर्तन हो जाता है।

प्रश्न २०—ध्वनि-नियम क्या हैं? ग्रिम (Grims Law) कृति ध्वनि-नियम की संक्षेप समीक्षा कीजिए। क्या ध्वनि-नियम भी उसी प्रकार अकाट्य हैं जैसे प्रायः वैज्ञानिक नियम?

ध्वनियों में परिवर्तन नैसर्गिक रूप से होता रहता है। भाषा की कुछ ध्वनियों में ये विकार अल्पतः या पूर्णतः विनिश्चित नियमों के अधीन होते हैं। प्रायः परिस्थितियों की एकरूपता या निश्चित गति के परीक्षण पर ही ये नियम अवलम्बित हैं। जैसे साहित्य 'य' साहित्य में 'व' हो गया, यह एक नियम है। इन नियमों के अन्वय भी होते हैं, यथा मागधी साहित्य में साहित्य 'व', 'व' ध्वनि में परिवर्तित होकर 'य' रहा।

ध्वनि नियम क्या हैं?—यह प्रश्न सर्वत्र से भाषा-विज्ञानियों के अतिशय प्रसूत रहा है। सर्वप्रथम नियम के विषय में जानना आवश्यक है। विद्वत् परिगणनीयों में एक विधा के अन्वयित रूप में ध्वनि होने की नियम बतलते हैं।

इसमें समय और स्थान का कोई बन्धन नहीं है ये नियम सार्वकालिक या सार्वदेशिक होते हैं। पर ध्वनि-नियम में यह बात नहीं है और ये काल और स्थान को नहीं लाय सकते हैं। इनके घनेक अपवाद मिलते हैं। अतः ध्वनि-नियम उसी प्रकार अकाट्य नहीं है जैसा वैज्ञानिक नियम। इन दोनों नियमों में बहुत फर्क है।

वैज्ञानिक तथा ध्वनि-नियम में अन्तर—(१) जैसा कि ऊपर स्पष्ट है वैज्ञानिक नियम एक निश्चित परिस्थिति या कार्य में सही उतरते हैं। वे काल विशेष की अपेक्षा नहीं रखते हैं, क्योंकि ये सार्वकालिक या सब कालों में एक रूप से घटित होते हैं। उदाहरणार्थ—दो और दो चार होते हैं, और होते ये और होंगे। ध्वनि-नियमों में यह विशेषता नहीं है। यह निश्चित नहीं कि प्राचीन काल के ध्वनि-परिवर्तन आधुनिक या भावी ध्वनियों पर भी लागू होंगे।

(२) वैज्ञानिक नियम सार्वदेशिक होते हैं। न्यूटन का नियम प्रायः सर्वत्र लागू होता है पर ध्वनि-नियम देश या स्थान भेद से लागू नहीं हो पाते हैं।

(३) वैज्ञानिक या प्राकृतिक नियमों में अपवाद नहीं होते जब कि ध्वनि-नियम पद-पद पर अपवाद छोड़ते चलते हैं, संस्कृत 'नृत्य' का 'नाच' हो गया पर 'भृत्य' का 'भाच' नहीं हुआ। 'धर्म' का 'धम्म' हो गया परन्तु 'कर्म' का 'कम्म' नहीं हुआ। अतः वैज्ञानिक नियम सभी परिस्थितियों में सत्य तथा अकाट्य होते हैं परन्तु अपवादों की बहुलता के कारण ध्वनि-नियम सर्वावस्थाओं में न घटित होते हैं और न अकाट्य ही। ध्वनि-नियम वर्तमान या भविष्य के सम्बन्ध में न होकर केवल भूतकाल के सम्बन्ध में होते हैं और एक विरि जातिगत भाषा के अन्तर्गत ही होते हैं। इसलिए कुछ विद्वान इन्हें ध्वनि-नि न कह कर ध्वनि-प्रवृत्ति (Phonetic tendency) ही कहना उचित समझते हैं। ध्वनियों में अपवादों का बाहुल्य ही नियम की सज्ञा को सिध्दित कर देता है। ध्वनि-नियमों में अपवाद होने के सामान्यतः चार कारण हैं। (क) सादृश्य सबसे बड़ा कारण है। सादृश्य के कारण शब्द नियमानुसार रूप धारण न कर अन्य रूप धारण कर लेता है। (ख) विदेशी शब्दों का उधार आना भी अपवाद का महत्वपूर्ण कारण है। नवागत विदेशी शब्दों पर ध्वनि-नियम घटित नहीं होते हैं। (ग) तीसरा कारण एक भाषा के प्राचीन या वर्तमान शब्द-रूपों

का ग्रहण करता है जिन पर ध्वनि-नियम लागू नहीं होता है। (घ) अनेक बार ऐसा होता है कि अन्य भाषा का मिनता-जुलता रूप भाषा में अपना स्थान ले लेता है और प्राचीन शब्द का ही रूप समझ लिया जाता है। उसे भी अस्वाभाविक रूप में ले लिया जाता है। जैसा कि हिन्दी शब्द कोटवाल तथा फारसी भाषा से आये शब्द 'कोतवाल' में रूप-साम्य है। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि वैज्ञानिक नियम की भाँति ध्वनि नियम पूर्ण नहीं है। फिर भी ध्वनि-विषयक इन प्रवृत्तियों को ध्वनि-नियम ही कहा जाता है। ध्वनि-नियम की परिभाषा निम्न हो सकती है—

“किसी विशिष्ट भाषा की कुछ विशिष्ट ध्वनियों में, किसी विशिष्ट काल और कुछ विशिष्ट दशाओं में, हुए नियमित परिवर्तन या विकार को उस भाषा का ध्वनि-नियम कहते हैं।”

दस परिभाषा के चार घग हैं।

(१) विशिष्ट भाषा का अर्थ भाषा विशेष है। एक विशेष भाषा विषयक नियम अन्य भाषा पर घटित नहीं हो सकते। उदाहरणार्थ अंग्रेजी फादर (FATHER) के उच्चारण में 'र' का उच्चारण न होकर 'फाद म' होता है पर हिन्दी में 'अम्बर' शब्द 'अम्बर' उच्चारित नहीं होता है।

(२) विशिष्ट ध्वनियों पर ही यह नियम लागू होते हैं, सब ध्वनियों पर नहीं, यथा FATHER में 'R' का उच्चारण न होते देख MAN में 'N' के उच्चारण का त्याग नहीं कर सकते हैं और 'मैम' न कह 'मैन' हो कहेंगे।

(३) विशिष्ट काल का ही प्रयोग ध्वनि-परिवर्तन के लिए किया जाता है। उपर्युक्त 'अ' ध्वनि का लोप हम प्राचीन अंग्रेजी में नहीं कर सकते हैं, यह आधुनिक काल में ही प्रयुक्त होता है।

(४) विशिष्ट परिवर्तितियों से ही कोई ध्वनि नियम बोधा जाता है। उपरोक्त उदाहरण में प्रायः यह नियम है कि वाक्य के किसी शब्द की ध्वनिम और उसके बाद के शब्द का प्रथम अक्षर ध्वनन हो तो 'धार'

लागू होता है और यदि शब्द का प्रारम्भ प्रसार ध्वनि-नियम में किसी न किसी अवस्था में है।

[illegible]

बैज्ञानिक तथा ध्वनि-विषय में प्रसार—(१) ऐसा कि प्रारम्भ है वैज्ञानिक विषय एक विशिष्ट वास्तविकता का कार्य है नहीं करता है। न काल विशेष को छोड़ना नहीं रखने है, क्योंकि वे सांस्कृतिक या सब कारणों से एक रूप में परिणत होने हैं। उदाहरणार्थ—सो घोर सो पार होता है, घोर होते से घोर होते। ध्वनि-विषयों में यह विशेषता नहीं है। यह निदिशत नहीं कि प्राचीन काल के ध्वनि-परिवर्तन प्राधुनिक का भावी ध्वनियों पर भी लागू होंगे।

(२) धैर्यात्मिक नियम आश्चर्यजनक होते हैं। ग्लूटन का नियम प्रायः सर्वत्र लागू होता है पर ध्वनि-नियम देश या स्थान भेद में लागू नहीं हो पाते हैं।

(३) वैज्ञानिक या प्राकृतिक नियमों में अपवाद नहीं होते जब कि ध्वनि-नियम पद-पद पर अपवाद छोड़ते चलते हैं, सद्यः 'नृत्य' का 'नाच' हो गया पर 'भृत्य' का 'भाष' नहीं हुआ। 'धर्म' का 'धम्म' हो गया परन्तु 'जर्म' का 'कम्म' नहीं हुआ। अतः वैज्ञानिक नियम सभी परिस्थितियों में सत्य तथा अका-ट्य होते हैं परन्तु अपवादों की बहुलता के कारण ध्वनि-नियम सर्वावस्थामों में न घटित होते हैं और न अकाट्य ही। ध्वनि-नियम वर्तमान या भविष्य के



**प्रथम नियम—(Grim's Law)—**इस नियम की पूर्ण विवेचना करने वाले जर्मन भाषा के महान्त वाकोव विन हैं। अपने १८१६ में जर्मन भाषा का एक व्याकरण प्रकाशित किया। विश्व नियम का विवरण उस व्याकरण के द्वितीय संस्करण (सन् १८८२) में है। वे नियम प्राचीन भारोपीय भाषा, संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, जर्मन, गाथिक तथा प्रबोली के तुलनात्मक विवेचन के पदधान बनाने थे। इस नियम का सम्बन्ध भारोपीय स्वरो से है जो ग्रीक, लैटिन, संस्कृत आदि भाषाओं को तुलना में, जर्मन भाषा में स्थिति होकर परिवर्तित हो गये थे। जर्मन भाषा का यह वर्ण-परिवर्तन दो बार हुआ। प्रथम वर्ण-परिवर्तन ईसा की कई सताब्दी पूर्व हुआ था और द्वितीय वर्ण-परिवर्तन सातवीं सताब्दी के आग-यास हुआ, जब एंग्लो-सेक्सन लोग उत्तरी जर्मन लोगों से घृष्य हो गये थे। दोनों वर्ण-परिवर्तन जातीय निधन के फलस्वरूप हुए थे।

**प्रथम वर्ण-परिवर्तन—(First Sound Shifting)—**प्रारम्भ में विन-नियम का स्वरूप इस प्रकार से था—

(१) जहाँ संस्कृत, ग्रीक, लैटिन आदि में मघोप भ्रतप्राण स्पर्श होता है, वही गाथिक प्रबोली, डच आदि भाषाओं में महाप्राण ध्वनि और उच्च जर्मन में सघोप वर्ण होता है।

(२) संस्कृत आदि का महाप्राण, गाथिक आदि का सघोप उच्च जर्मन का मघोप वर्ण होता है।

(३) संस्कृत आदि का सघोप-गाथिक का मघोप उच्च जर्मन में महाप्राण होता है। सधोप में यह निम्न प्रकार से है—

संस्कृत आदि	गाथिक	उच्च जर्मन
-------------	-------	------------

(१) मघोप (क्, त्, प्)	महाप्राण (ख्, घ्, फ्)	सघोप (ग, द, ब)
-----------------------	-----------------------	----------------

(२) महाप्राण (ख्, घ्, भ्)	सघोप (ग, द, ब)	मघोप (क्, त्, प्)
---------------------------	----------------	-------------------

(३) सघोप (ग, द, ब)	मघोप (क्, त्, प्)	महाप्राण (ख्, घ्, फ्)
--------------------	-------------------	-----------------------

इस नियम में अनेक दोष देखकर ग्रिम ने (१८२२ ई० के) द्वितीय संस्करण में कुछ सुधार किए तथा भारोपीय ध्वनियों के पारस्परिक परिवर्तन को प्रथम वर्ण-परिवर्तन—... उच्च-जर्मन के परिवर्तन को द्वितीय वर्ण-परिवर्तन में



रक्ता । प्रथम वर्ण-परिवर्तन के अन्तर्गत भारोपीय भाषा की परिवर्तित स्पर्श-ध्वनियों का रूप इस प्रकार है—

(क) भारोपीय मूल भाषा के घोष	जर्मनिक में घोष अल्पप्राण
महाप्राण स्पर्श प् ध् भ्	ग, द, ब् हो गये ।
(ख) भारोपीय मूल भाषा के घोष	जर्मनिक में अघोष अल्पप्राण
अल्पप्राण ग्, द्, ब्	क्, त् प् हो गये ।
(ग) भारोपीय भाषा के अघोष	जर्मनिक में सधर्मी अघोष
अल्पप्राण क्, त्, प्	महाप्राण ख्, (ह) थ् फ्
	(घ), (ङ), (झ) हो गये ।

मूल भारोपीय भाषा की ये स्पर्श-ध्वनियाँ संस्कृत, ग्रीक और लैटिन में तथा जर्मनिक ध्वनियाँ गॉथिक और निम्न जर्मन (अप्रोजी) में सुरक्षित हैं ।  
उदाहरणार्थ—

संस्कृत	ग्रीक	लेटिन	अप्र जी	गणिक	जर्मन
हंस	khen	(H) anser	goose गूज	gans गंस	माचीन उच्च जर्मन (मा० उ० ज०)
विंतिः धा	Thesis	thesis	deed डीड	—	ga-deds, tat टाट
विभ्रवा	—	—	widow विडो	—	—
धम	—	—	dust डस्ट	—	—
भरामि	Pherein	fero	bear बीअर	—	bairan
भ्रातृ	—	—	brother ब्रादर	—	—
भवा (मि)	Phuo	—	be बी	—	pim (मा० उ०)
युगम्	zugon	iugum	yoke योक	Juk	Jock (यास जग)
गो	—	—	cow काउ	—	—cu
दश	—	decem	ten टेन	—	zehn (जेस)
डो	—	—	two टू	—	—zwei
—	dela	labium	lip लिप्	—	—
—	—	Lomba	lap लेप	—	—
*स्तेडव	—	—	slip	—	—
क.	—	quo	who हू	hwo	hwer
कद्	—	quod	what	hwes	was
हुन.	kunos	canis	hound	hands	hund
(प्रचीन क् के स्थान पर ह्)	—	—	(h=kh)	—	—

(क) 'घ' से ग्

'घ' से 'द्' (ड)

भ् से ब्

(ख) ग् से ब्

द् से त् (ट)

व् से प्

(ग) क् से ख्  
(ह)

त्रि सं भू	त्रि	treis	tris	three थ्री	thresi	—drei द्राय
दा		—	—	tooth टूथ	—	—
तदु		—	—	thin थिन	taurnus	—
तनुम्		—	—	thron थ्रोन	thairsan	dorn
तुपा	(ters omar)	—	—	thirst थर्स्ट	fader	—
पिता	—	—	pater	father फादर	nift	vater (v=f)
पशु	—	—	pecus	fee फी	facihu	vich
नपात	—	neptis	nepos	nephew नेप्पू	(प्रा० उ० ज०)	neffe

(प्रा० उ० ज०)

द्वितीय वर्ण-परिवर्तन (Second Sound Shifting)—प्रथम परिवर्तन में मूल भाषा के जर्मनिक भाषा भिन्न हुईं जो पर इम द्वितीय परिवर्तन में जर्मन भाषा के हो शो कर—उपर गया निम्न जर्मन हुए जो उन्ही शो भाषा में प्रचल पड़ा। कारण यह है कि जर्मन भाषा के विस्तार पूर्व निम्न जर्मन शब्दों (यज्जेन आदि) वहाँ गे हट गए थे। अतः परिवर्तन जर्मन में हुआ और परिणामस्वरूप कुछ प्रान्तों भिन्न-भिन्न हो गईं जंग—

निम्न जर्मन (यज्जेन)		उच्च जर्मन
प् वा ड् (d)	= थ्री (three)	द्राय (Drei)
ड् वा ड्	= डीड (Deed)	टाट (tat)
क् वा य्	= योक (yoke)	याच (joeh)
ट् का दग् वा स्म	= फुट (foot)	फम्म (fuss)
ग् का फ्	= डीप (Deep)	टीफ (tief)
	शीप (sheep)	शाफ (schaf)

उपर्युक्त दोनों वर्ण-परिवर्तन की सहायता से निम्न नियम-तालिका प्रिन्ने बताई—

मूल भाषा	आदिम जर्मनिक	उच्च जर्मन
घ, ध, भ	= ग, द, ब	क, त, प
ग, द, ब	= क, त, प	ख (ह) घ, फ
क, त, प	= ख (ह), घ, फ	ग, द, ब

प्रथम वर्ण-परिवर्तन

द्वितीय वर्ण-परिवर्तन

हम इसको त्रिभुजाकार रूप में इस प्रकार रख सकते हैं—



अगर इस त्रिभुज के किसी कोने से भारोपीय ध्वनियों (मस्कृत, ग्रीक, लैटिन) मानकर प्रारम्भ करें तो सकेतित दिशा में जाने से गौंधिक और निम्न जर्मन की ध्वनियाँ प्राप्त होगी जो भारोपीय ध्वनियों का परिवर्तित रूप है। यही प्रथम वर्ण-परिवर्तन है, जैसे १ से २ तथा २ से तीन और ३ से एक एक कोना लाँघने पर अन्य कोने पर हमें उच्च या आधुनिक जर्मनिक ध्वनियाँ मिलेंगी जो भारोपीय से भिन्न होगी। यही द्वितीय वर्ण-परिवर्तन की दशा है। यथा १ से ३ आदि। समझने के लिए भारोपीय क, घ, भ् ध्वनियाँ क्, त्, प् उच्च जर्मनिक ध्वनियों में परिवर्तित हो जाती हैं। अर्थात् उच्च जर्मन का वर्ण-परिवर्तन, निम्न जर्मन ने एक कदम आगे निदिष्ट दिशा में चलना है। त्रिभुज के घीर्ष से हमें वर्ण-परिवर्तन की उचित दिशा प्राप्त होती है।

प्रिम वृत्त नियम-तालिका प्रथम वर्ण-परिवर्तन के लिए अधिनाग रूप में ठीक है पर द्वितीय वर्ण-परिवर्तन के लिए अस्वादो के बाहुल्य के कारण भ्रम नही बही जा सकती है। दोनों वर्ण-परिवर्तन का प्रारम्भिक रूप जो यस्तुन मिलता है इस प्रकार है।

$$X = ch = n$$

भूत भाषा	निम्न जर्मन या आदिम जर्मन	उच्च जर्मन
घ, ध, भ	= ग, द, ब,	= X, d, λ
ग, द, ब	= ब, ग, घ,	= X, ब, ल
		(u), Sz, SS, f च
ब, ल, प	= ख (ह), फ, फ,	= X, द (इ), ल, X

प्रश्न २१—प्रासमैन और यर्नर के ग्रिम-नियम-संशोधन पर दृष्टि डालते हुए ध्वनि-नियमों का विवेचन कीजिए। (वि० वि० १९५५)

ग्रिम-नियम में अनेक अपवाद देखे गये। इन अपवादों का प्रधानतः कारण सादृश्य की भावना है। उदाहरणार्थ फादर (Father), मदर (Mother) तथा (Brother) ब्रदर तीनों शब्दों में 'द' (Th) ध्वनि सामान्य रूप से मिलती है। परन्तु जर्मन में इसके रूप फाटर (Fater), मटर (Mutter) तथा ब्रडर (Bruder) मिलते हैं जिनकी ध्वनियों में पर्याप्त अन्तर है परन्तु आधुनिक अंग्रेजी में सादृश्य के कारण एकरूप कर दिये गए हैं। सदृश विदेशी उधार ली हुई ध्वनियाँ भी अपवाद का कारण हैं। जैसे संस्कृत में 'क्रमेलक' शब्द सेमेटिक भाषाओं से कैमल (Camel) से उधार ली गई है। 'र' और 'क' ध्वनियों का इसमें अन्तर्भूत होने के कारण से यह संस्कृत का शब्द प्रतीत होता है।

ग्रिम महोदय ने स्वयमेव इन अपवादों के आधिक्य को स्वीकार किया है। कुछ अपवाद नियमित हुए हैं, यथा स्क, स्त तथा स्प ध्वनियों में 'स्' ध्वनि ने कई स्थानों में वर्ण-भ्रितिवर्तन नहीं होने दिया। क्त (KT) और प्त (PT) में त अपरितित रहा तथा त्त (TT) गौणिक में थ्ट (Tht) और बाद में स्स् (ss) ध्वनि में बदल गया।

प्रासमैन-नियम—ग्रिम के ध्वनि-नियम के अनुसार क्रमशः क्, त्, प् का ख् (ह्), थ्, फ् होना चाहिए परन्तु अपवाद स्वरूप ग्, द्, ब् मिलता है। उदाहरणार्थ ग्रीक किण्वो से अंग्रेजी में हो (Ho), लुप्तोस से थम (Thump) और पियाम में फाड़ी (Fody) बनना चाहिये पर, गो (go), डम (Dump) तथा बाडी (body) मिलता है। इस अपवाद का समाधान प्रासमैन ने यह नियम बना कर किया कि मूल भारोपीय भाषा में यदि शब्द या धातु के आदि और अन्त दोनों स्थानों पर ध्वनियाँ महाप्राण हों तो संस्कृत और ग्रीक आदि ने प्रायः एक ध्वनि अल्पप्राण बन जाती है। जैसे संस्कृत की √ हु (= हुवन करना) का मूल रूप, जुहोति, जुहुत, जुह्वति न होकर हुहोति, हुहुतः हुह्वति होना चाहिए। इसी प्रकार √ भृ = डरना से भिभति न होकर 'विभति' रूप बनता है।

इससे यह परिणाम निकलता है कि भारोपीय मूल भाषा की दो अवस्थाएँ रही होगी। पहली अवस्था में दो महाप्राण रहे होंगे दूसरी में केवल एक महा-

प्राण ध्वनि की स्थिति मान्य हो सकती है, यथा—

पूर्वावस्था

उत्तरावस्था

\*√भुध से बोधामि

√बुध से बोधामि

घघामि

दधामि

भभार

वभार आदि ।

अपवादस्वरूप जहाँ क्, त्, प् के स्थान पर ग्, द्, ब् मिलने हैं वहाँ प्राचीनकाल में क्, त्, प् का पुराना रूप ख् (ह), घ्, फ् अर्थात् भारोपीय भाषा में फ्, ध्, भ् रहा होगा जिसका आगे चलकर ग्, द्, ब् बना होगा । इस वत्पना में वर्ण-परिवर्तन नियमानुकूल हो जाता है तथा जिन रूपों में अपवाद स्वरूप एक पग आगे परिवर्तन हो जाता था, उनका इस नियम से समाधान हो गया ।

वर्नर-नियम—प्रासमैन-नियम के पश्चात् भी कुछ अपवाद रह गये थे । जैसे क्, त्, प् के स्थान में जर्मन भाषाओं में ग्, द्, ब् हो जाता है । उदाहरणार्थ—युवक, दत्तम् का साधारण नियमानुसार यूथ (youth), हन्ड्रेड (hundred) होता चाहिये था परन्तु यंग (young) तथा हन्ड्रेड (hundred) रूप मिलता है । वर्नर ने इन अपवादों पर विचार कर यह निश्चित किया कि प्रिम-नियम स्वराघात (accent) पर आधारित था । मूल भाषा के क्, त्, प् के पूर्व यदि स्वराघात हो तो प्रिम-नियम के अनुसार परिवर्तन होता है पर यदि स्वराघात क्, त्, प् के बाद वाले स्वर पर हो तो परिवर्तन एक पग और आगे प्रासमैन नियम की भाँति ग्, द्, ब् हो जाता है । इनमें यदि मूल भारोपीय भाषा के पूर्व स्वराघात न होने पर ख्, ठ्, फ् (x, b, f) महाभाषा स्पर्ग अक्षरान् बन जाते हैं । जैसे—

सरहुड

गॉथिक

सप्प

सिबुन (Sibun)

एनम्

हन्ड (Hunda)—Hundred

जुजग्ल

जुज (Juggs) (यही 'ग्' प्राचीन ख् का प्रतिनिधि है)

प्रिम के पश्चानुसार 'क्' के स्थान पर 'ग्' न मिलकर कुछ उदाहरणों में

'र' मिला है। जैसे स्नुग्ना का Snoru का न मिलाकर Snoru का मिलता है। इसके निम्न वनंर ने (रासायन) को ही कारण माना। 'लृ' के पूर्व स्वरापाठ होने पर 'लृ' ही रहना ध्वनवा 'रृ' हो जावेगा।

वनंर ने एक दृष्टिकोण रखा कि भारोवीय कृ, गृ, रृ के पूर्व न् मिला हो (यथा कृन्, गृन्, रृन्) तो जर्मैनिश में घाने पर ध्वनियों में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं मिलता। इसी प्रकार ठ यदि कृ या गृ के साथ हो तो कोई परिवर्तन नहीं होगा।

उदाहरणार्थ—

भारोवीय				जर्मैनिश		
मूलशब्द	ग्रीक	लैटिन	गोथी	प्रथमो	द्वन्द्व	त्रयन्त
कृन्-कृ	—	piskis	liskis	lish	—	lisch
कृन्-कृ	मास्ति	esti	est	ist	is	ist
	पष्टा	okto	octo	ahtau	—	acht
कृन्-कृ	—	spicio	—	—	—	spehon(O H G)
कृन्-कृ	नष्टा	—	Neptis	—	—	Nift (O H G)

वनंर के इस उपनिषम (Corollary) के समोपन के पश्चात् भी सादृश्य के कारण प्रिम्-नियम में अनेक प्रपवाद रह गये हैं।

अन्य ध्वनि-नियम

तालव्य-नियम (Palatal Law)—कण्ठ्य व्यंजन के तालव्य हो जाने से इसे तालव्य-नियम कहा जाता है। कुछ शब्दों में संस्कृत में च् घोर ज् के स्थान पर अन्य भाषाओं में क् घोर ग् मिलते हैं। इस प्रवृत्ति का यह नियम बना कि संस्कृत शब्दों में 'घ' स्वर, ध्वनि की दृष्टि से ग्रीक या लैटिन ओ (O) की तरह है। उसके पूर्व क् या ग् ही व्यंजन पाया जाता है, पर यदि 'घ' स्वर लैटिन या ग्रीक ई (e) की भाँति है तो कण्ठ्य क् या ग् न होकर तालव्य च् घोर ज् मिलता है। जैसे—एक ही धातु पच् में बने रूप 'पचति' (च्+घ में घ ग्रीक ई (e) की भाँति है) घोर 'पकस्' (क्+घ में घ ग्रीक (o) की भाँति है) में यह देखा जा सकता है। यतः निष्कर्ष यह है कि किसी काल में संस्कृत 'घ' के स्थान पर 'इ' घोर 'ओ' स्वर भी थे। अघस्वर 'इ' के पूर्व का कण्ठ्य



अन्य भाषाओं में परिवर्तित हो गया और अन्त्यस्मृत् का अन्त छोड़ गृ का अन्त हो गया। इस भाषा में छीक, रेंडित आदि की 'ह' और 'छी' ध्वनियों के मूल-स्थित रहने के कारण मूल भाषा-विषय के मूलवर्ण की प्रकृति अतिशय निकट समझा जाना पता है।

छीक-निधन—मूल भाषा-विषय प्रकृति में दो ध्वनियों के सम्मिश्रणों का जोड़ में 'ह' होकर गृह हो जाता, जैसे—\*Gencetox = gencetox = gencetox।

रीडित निधन—इसमें गृह की 'ह' का 'र' हो जाता, जैसे—\*Gencetox = gencetox।

पाशो-निधन—मूलवर्ण 'ग' का पाशो में हूँ मिलना, प्रकृति प्रकृति = हूँ, निधन निधन।

अन्य ध्वनि-निधन—घोषप्रकृति या मूलवर्ण निधन आदि है।

प्रश्न २—भाषा-विषय परिवार की विशेषताओं और मूलवर्ण पर प्रकाश डालते हुए उनके विभाजन का भी परिचय दीजिए। (पञ्च वि० १२१०)

भाषा-विषय परिवार विश्व का सर्वाधिक व्यवस्थित परिवार है। इन परिवार की भाषाएँ विश्व में मुख्य अधिक प्रकृति के द्वारा बोली जाती हैं तथा भौगोलिक स्थिति की दृष्टि से इसका महत्व है। इस परिवार का उत्तर उत्तरी भाग में मेजर समानिष्ठा होता हुआ मूलवर्ण अष्टाई भाग का छोड़कर ब्रिटिश द्वीप परसे है। इसके साथ ही प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य तथा धर्म की दृष्टि में इस परिवार का महत्व अधिक है। भाषा वैज्ञानिक मूलवर्ण की दृष्टि में मूलवर्ण की वैदिक निधि अत्यन्त है। इनके साथ ही आज भी विश्व में इस परिवार की भाषाओं का अन्तर्राष्ट्रीय महत्व है तथा वे अन्य भाषाओं की भाषाएँ मानी जाती हैं। अंगरेजी, फ्रेंच, रूसी, स्पेनिश तथा हिन्दी आज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रचलित हैं।

नामकरण—इस परिवार के अनेक नाम हैं। सर्वप्रथम इसे भारत-जर्मनी "इण्डो-जर्मनिक" नाम दिया गया था क्योंकि इसकी सीमा भारत से जर्मनी तक आती गई परन्तु बेट्टी साखा की भाषाओं की दृष्टि से यह नाम उपयुक्त न समझा गया। मेक्समूलर का धार्य परिवार तथा अन्य नाम इण्डो-केल्टिक और जेकेल्टिक भी सर्वमान्य न हो सके। भौगोलिक दृष्टि से इण्डो-केल्टिक नाम

‘र’ मिला है। जैसे स्नुषा का Snosu रूप न मिलकर Snoru रूप मिलता है। इसके लिए वनर ने स्वराघात को ही कारण माना। ‘स्’ के पूर्व स्वराघात होने पर ‘स्’ ही रहेगा अन्यथा ‘र’ हो जायेगा।

वनर ने एक दृष्टिकोण रखा कि भारोपीय क्, त्, प् के पूर्व स् मिला हो (यथा स्क, स्त, स्प) तो जर्मनिक में घाने पर ध्वनियों में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं मिलता। इसी प्रकार त यदि क् या प् के साथ हो तो कोई परिवर्तन नहीं होता।

उदाहरणार्थ—

	भारोपीय			जर्मनिक		
	संस्कृत	ग्रीक	लैटिन	गाथी	अंग्रेजी	उच्च जर्मन
स्क-स्क	—	—	piskis	hskks	hsh	fisch
स्त-स्त	घास्ति	esti	est	ist	is	ist
	अष्टा	okto	octo	ahtau	—	acht
स्प-स्प	...	—	spicio	—	—	spehon(O H G)
प्ल-प्ल	नप्ता	—	Neptis	—	—	Nift (O H.G.)

वनर के इस उपनियम (Corollary) के संशोधन के परचात् भी साहू के कारण ग्रिम-नियम में अनेक अपवाद रह गये हैं।

३—जो प्रत्यय जोड़े जाते हैं उनके स्वतंत्र अर्थ का पता नहीं है। परन्तु यह अनुमान है कि वे भारोपीय प्रत्यय भी स्वतंत्र शब्द थे तथा अन्य भाषाओं के प्रत्ययों की भाँति उनका भी अर्थ था, कालान्तर में धीरे-धीरे ध्वनि-परिवर्तन के चक्र में पड़ने से उनका प्राधुनिक रूप मात्र शेष रह गया है।

४—पूर्व-सर्ग या पूर्व-विभाषिकों का प्रयोग बान्टू परिवार की भाँति सम्बन्ध सूचक या वाक्य-रचना के लिए नहीं होता है। भारोपीय कुल में इनका अधिकता से प्रयोग शब्द तथा क्रिया के अर्थ को बदलने में किया जाता है यथा—आहार, बिहार तथा परिहार में 'प्रा', 'वि' तथा 'परि' पूर्वसर्ग या उपसर्ग हैं तथा इनकी मूल प्रकृति समास की तरह होती है और इनको धातु या शब्द से पृथक् किया तथा छोड़ा जा सकता है।

५—भारोपीय-परिवार की प्रमुख विशेषता समास-रचना की विशेष शक्ति है। समास बनाते समय विभक्तियों का लोप हो जाता है। सम्बन्ध पद के अर्थ तथा उन शब्दों के स्थान पर रखने से (जिनसे समास बना है) सम्भावित अर्थ में महान् अन्तर होता है। सम्बन्ध पद में एक नया अर्थ निबलने लगता है। वास्तव में भारोपीय समास को हम व्युत्पन्न अवस्था में अभिव्यक्त वाक्य-खण्ड के रूप में ले सकते हैं। वेल्व भाषा का सम्बन्ध शब्द बहुत बड़ा तथा लम्बा होता है। इसी प्रकार संस्कृत में भी यहो दया है।

६—आरध्वनि या घर्शगवस्थान (Vowel gradation) इस परिवार की एक विशेषता है। इसमें स्वर-परिवर्तन से प्रत्यय या सङ्ग-धन्व मध्य-शे परिवर्तन हो जाता है। संस्कृत आरम्भ में किसी शब्द में विशिष्ट स्थान पर स्वगदात्त के कारण स्वर-परिवर्तन में धीरे-धीरे प्रत्ययों का लोप हो गया था सम्बन्ध पद परिवर्तन, स्वर परिवर्तन के द्वारा स्पष्ट होने लगा। इस लक्ष्य का दमन अंग्रेजी की बड़ी विद्याओं में स्पष्ट रूप में मिलता है।  
—drank, drank, drunk में। यहाँ (a), (u) तथा (u) में स्वर-परिवर्तन से उनमें एक ही सम्बन्धो परवर्तन हो गया है। दमन स्वरगदात्त के कारण ध्वनि में लोप हो चुका है।

७—संस्कृत भाषाईय परिवार में द्रव्य-रूपों का आधिकार है। द्रव्य एवं धातु कारण पद था जो कि निबलने पर विभिन्न नामाओं का स्वतंत्र रूप में

उचित ही है क्योंकि सीमा के दोनों भागों पर भारतीय तथा केल्टिक भाषाएँ हैं। जैस्पर्सन 'आर्य' नाम को अधिक गौरव प्रदान करते हैं। परन्तु फ्रांस और इंग्लैण्ड के विद्वानों ने इस परिवार का नाम इन्डो-यूरोपीयन या भारत-यूरोपीय पसन्द किया। महाद्वीप की दृष्टि से यह नाम ठीक है। भारत-यूरोपीय का संक्षिप्त रूप 'भारोपीय-परिवार' भारत तथा यूरोपीयन देशों में प्रचलित हो चुका है। भाषा-वैज्ञानिक भी इस नाम को तथ्यपूर्ण मानते हैं। प्राचीन सभ्यता, संस्कृति तथा साहित्य की दृष्टि से यह परिवार विश्व के सर्वाधिक गौरवमय तथा समृद्ध है। इस परिवार की भाषाओं का पोषण अनुशीलन पर्याप्त माप में हुआ है।

**भारोपीय-परिवार की मुख्य विशेषताएँ—**

(१) यह परिवार द्विलिङ्ग-योगात्मक है। आरम्भ में इन परिवार की भाषाएँ प्रयोगात्मक थीं पर विकसित होकर एक लिंग को छोड़ कर प्रायः सभी भाषाएँ द्वियोगात्मक हो रही हैं। सर्वप्रथम प्रत्यय शब्द का एक भ्रम था तथा धातु के उनका अभिन्न योग रहता था। कालान्तर में ध्वनियों में विभाग के कारण प्रत्यय नष्ट होकर लुप्त हो गये और उनके स्थान पर परसर्ग तथा एङ्गनक विभक्ति आदि का महत्व बढ़ गया। इन विकार के परिणामस्वरूप अब भाषाएँ सयोगात्मक और विभक्ति प्रधान रूप में द्वियोगात्मक तथा स्वतन्त्र प्रयोग में आई हैं। जैसे 'राम मोहन को पीटा है' या 'राम मोहन को पीटा' के पारस्परिक स्थान, परिवर्तन में धर्म परिवर्तित हो जाता है। यह धृति धर्मो, ईशो तथा हिंसो में अधिक परिवर्तित हुआ है, मरुतु आदि आया। भाषायाँ ये यह आ।

३—जो प्रत्यय जोड़े जाते हैं उनके स्वतन्त्र अर्थ का पता नहीं है। परन्तु यह अनुमान है कि ये भारोपीय प्रत्यय भी स्वतन्त्र शब्द थे तथा अन्य भाषाओं के प्रत्ययों की भाँति उनका भी अर्थ था, कालान्तर में धीरे-धीरे ध्वनि-परिवर्तन के चक्र में पड़ने से उनका प्राधुनिक रूप मात्र शेष रह गया है।

४—पूर्व-सर्ग या पूर्व-विभक्तियों का प्रयोग बान्टू परिवार की भाँति सम्बन्ध सूचक या वाक्य-रचना के लिए नहीं होता है। भारोपीय कुल में इनका अधिकता से प्रयोग शब्द तथा क्रिया के अर्थ को बदलने में किया जाता है यथा—आहार, विहार तथा परिहार में 'आ', 'वि' तथा 'परि' पूर्वसर्ग या उपसर्ग हैं तथा इनकी मूल प्रकृति समास की तरह होती है और इनकी धातु या शब्द से पृथक् किया तथा छोड़ा जा सकता है।

५—भारोपीय-परिवार की प्रमुख विशेषता समास-रचना की विशेष शक्ति है। समास बनाने समय विभक्तियों का लोप हो जाता है। समस्त पद के अर्थ तथा उन शब्दों के स्थान पर रखने से (जिनने समास बना है) सम्भावित अर्थ में महान् अन्तर होता है। समस्त पद में एक नया अर्थ निकलने लगता है। वाक्य में भारोपीय समास को हम व्यवहृत अवस्था में अभिव्यक्त वाक्य-खण्ड के रूप में देख सकते हैं। वेल्ड भाषा का समस्त शब्द बहुत बड़ा तथा लम्बा होता है। इसी प्रकार मरहून में भी यही दशा है।

६—ध्रुवध्वनि या ध्रुवगवम्भान (Vowel gradation) इस परिवार की एक विशेषता है। इसमें स्वर-परिवर्तन में प्रत्यय या मध्य-पञ्चम्य मध्य-धी परिवर्तन हो जाता है। समस्त ध्रुवध्वनि में किसी शब्द में विविध स्थान पर स्वरगवम्भान के कारण स्वर-परिवर्तन में धीरे-धीरे प्रत्ययों का लोप हो गया था सम्बन्धित स्वर-परिवर्तन, स्वर-परिवर्तन के द्वारा स्पष्ट होते तथा। इस स्वर या ध्रुवध्वनि ध्रुवध्वनि की बनी विधाओं में स्पष्ट रूप में मिलता है।  
—drank, drank, drunk में। यहाँ (i), (u) तथा (u) में स्वर-परिवर्तन से उत्पन्न स्वर-परिवर्तन हो गया है। इसमें स्वरगवम्भान के पञ्चम्य ध्रुवध्वनि में भी स्पष्ट रूप में है।

७—समस्त भारोपीय परिवार में द्वयस्वरा का आधिक्य है। इसका एकमात्र कारण एक शब्द से निकलने पर विभिन्न शब्दों का स्वर-परिवर्तन



मैक्स तथा द्विजेनिक की बेल्ल, कार्लिक घोर ब्रिटन भाषाएँ हैं।

**द्यूटोनिक**—यह भारोपीय परिवार की महत्वपूर्ण शाखा है। इनकी भाषाएँ जर्मनी, स्वीडन, नार्वे, डेनमार्क, प्रगलैंड आदि में बोली जाती हैं। इस की तीन उपशाखाएँ हैं—१. पूर्वी जर्मन २. उत्तरी जर्मन ३. पश्चिमी जर्मन। पश्चिमी जर्मन उपशाखा का साहित्य तथा प्रचार की दृष्टि से बड़ा महत्व है। इस वर्ग की जर्मन भाषा तथा धर्मजी ने साहित्य समृद्धि के कारण अन्तर्राष्ट्रीय स्थाति प्राप्त कर ली है। 'ग्रिम-नियम' का वर्ण-परिवर्तन पश्चिमी जर्मनी की उच्च तथा निम्न जर्मन भाषा पर आधुन है। ये भाषाएँ प्राचीन काल से ही सहित से व्यवहृत की घोर बढ़ रही हैं।

**लैटिन या इतालिक**—इस शाखा की प्रमुख भाषा लैटिन है। यह रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय की धार्मिक भाषा है। कैल्टिक के समान इसके भी दो वर्ग 'प' घोर 'क' है। पहले की लैटिन तथा दूसरे की एम्ब्रो-मेमेनितिक कहते हैं। आन्ध्रारोपीय के अध्येता के लिए लैटिन का महत्व भी सस्कृत घोर ग्रीक के समान ही है। इसी से रोमान्टिक फ्रेन्च, स्पेनिश, पुर्तगाली, इतालियन तथा रूमानियन भाषाओं का विकास हुआ है।

**हेबेनिक**—वैदिक सस्कृत के बाद इस परिवार की भाषाओं का प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य ग्रीक भाषा में होमर की इलियड तथा ओडेसी महाकाव्यों में गुरुवित है जो ई० पू० ८५० का कहा जाता है। यह लैटिन के समान सम्य तथा विद्वान् समाज की भाषा रही है। ग्रीक भाषा तथा वैदिक सस्कृत में अत्यधिक साम्य है। दोनों में ही सगीतात्मक स्वरापाठ प्रधान था तथा बाद में दोनों बलात्मक स्वरापाठ की घोर प्रवृत्त हुई। सस्कृत में सज्ञा, सर्वनाम तथा ग्रीक में क्रिया घोर अव्यय के रूपों की अधिकता है। ग्रीक में स्वरी तथा सस्कृत में व्यञ्जनों की अपेक्षाकृत अधिकता है।







तोषारो—यह पूर्वज बुद्धिमान के गुणगान प्रदेन हो नाग है। चीं  
 लिए इन 'दाय' या 'र-ड' सार निरने मे यह भाग के केन्युन र्व हो है।  
 इन के भावनीय (काय, मलोप्यो) निनि मे कुछ पत्र साधु है। इन रर गुण  
 पर्याप्त वा मधीरता के कारण प्राचिक प्रभाव है। इसने ररों की नतिन  
 कम है। मणि निदम तथा निमतिनो सधुन के मनान है। सार-भागावरी  
 सधुन के निरर है, यवा नि का पापर, मा का मान, परर का मोक।  
 सतम् चर्ग

इस वर्ग की भाषाओं के चार उपकुल हैं—१. मल्लेनियन, २. बाल्तेस्ला-  
 विक, ३. धार्मेनियन तथा ४. धार्य या भारत-ईरानी।

मल्लेनियन या इसोरियन—यह साया कारिन्धियन की साओ से इटली के  
 दक्षिणी पूर्वी भाग तक फैली थी। उनमे सितालेयो के अतिरिक्त कई नी  
 साहित्यिक सामग्री उपलब्ध नहीं होती। इसके प्राचीन कालिक तथा माप  
 कालिक रूपों का कोई भी अवशेष प्राप्त नहीं है।

बाल्तेस्लाविक या लेटो-स्लविक—इस शाखा मे बाल्टिक तथा स्ला-  
 वोनिक युक्त उपशाखाओं का अस्तित्व है। बाल्टिक शाखा की प्राचीनतम  
 प्रकृति का पता नहीं लगता है। मध्यकाल मे इसकी तीन शाखाएँ हैं—लिथु-  
 धानियन, लेटिस तथा प्रशियन। प्राचीन प्रशियन सम्भवतः जर्मन के प्रभाव से  
 नष्ट हो गई है। दोनो भाषाएँ रूस और पश्चिमी भागों मे बोली जाती  
 हैं। स्लाविक उपशाखा की भाषाएँ मल्लेनिया, जैकोस्लेवाकिया, पोलेंड,  
 यूगोस्लाविया, यूक्रेन तथा रूस मे बोली जाती हैं। यदि भारतीय ध्वनिर्मा  
 इस शाखा मे सुरक्षित है।

धार्मेनियन—धार्मे वर्ग के पश्चिम मे इस शाखा की भाषाएँ स्थिति हैं।  
 इसमे ईरानी, तुर्की तथा कारसी सार वर्णोपत माया मे मिलते हैं। योरुप तथा  
 एशिया की सीमा पर बोली जाने वाली जीवन इसी के अन्तर्गत है। इस  
 भाषा का नवीन रूप प्राचीन रूप से सर्वथा भिन्न है तथा प्राचीन रूप अब भी  
 धार्मिक कार्यो मे प्रयुक्त होता है इस शाखा पर धार्य तथा अनार्य दोनों  
 भाषाओं का प्रभाव है।

भारत-ईरानी तथा धार्य शाखा—भारतीय-परिवार की धार्य-शाखा का

महत्व अनुलनीय है। भाषों का एक समूह ईरान की ओर बड़ा तथा कुछ भाषों ने भारत में प्रवेश किया। अतः इसको भारत-ईरान की शाखा भी कहते हैं। इस शाखा के तीन उपकुल हैं—(१) भारतीय, (२) दरद तथा (३) ईरानी। भारतीय भाषा शाखा को प्राचीनतम भाषा संस्कृत है, तथा प्राचीन साहित्य जो वैदिक मन्त्रों के रूप में उपलब्ध है—यह परिवार प्राचीनतम साहित्यिक निधि है। यह वैदिक साहित्य षेड-दो हजार ईसा पूर्व का है। भारतीय भाषा शाखा की परवर्ती भाषाएँ प्राकृत तथा अपभ्रंश की स्थिति को पार करती हुई आज की भारतीय भाषाओं के रूप में विकसित हुई हैं। अतः इनके तीन विभाग किये गये हैं—प्राचीन, मध्य तथा आधुनिक काल। ईरानी उपशाखा के अन्तर्गत पारसियों की प्राचीन भाषा अवैस्ता मिलती है और यह ऋग्वेदिक मन्त्रों से मिलती-जुलती है। इसकी प्राचीनतम भाषा ईसा से लगभग ८०० वर्ष पूर्व की कही जाती है। दरद भाषाओं का क्षेत्र पामीर तथा पश्चिमोत्तर पंजाब है। पश्तो की तरह वाक्य-गठन की दृष्टि से दरद का स्थान ईरानी तथा भारतीय भाषाओं के मध्य है। यदि पश्तो का झुकाव ईरानी की ओर है तो दरद का भारतीय भाषाओं की ओर। दरद उपवर्ग की तीन भाषाएँ हैं—खोवार, वाफिर और दरद। अवैस्ता के अतिरिक्त ईरानी का प्राचीन रूप अवेमेनिद राजाओं के ५२१ ई० पू० बूनिफोर्म शिलालेखों में प्राप्त होते हैं। परवर्ती भाषा पहलवी तथा प्रमुख आधुनिक फारसी हैं।

प्रश्न २३—भारतीय भाषा-भाषाओं पर अन्य भाषाओं का क्या प्रभाव पड़ा है? इसको स्पष्ट करते हुए बताइए कि भारत में किन परिवारों की भाषाएँ बोली जाती हैं।

भारतवर्ष एक बड़ा तथा विस्तृत देश है तथा इस दृष्टि से इनकी उपमहा-द्वीप भी कहा जा सकता है। इसमें अनेक परिवार की भाषा तथा बोलियाँ बोली जाती हैं। इस का मात्र कारण अनेक जाति तथा देशवासियों का इस देश में पन जाना है। भारतीय भाषाएँ तो इसी स्थान की अमूल्य सम्पत्ति हैं। इनके अतिरिक्त अन्धारीय भाषाओं में इविड़ वुल की भाषाएँ सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं तथा प्रायः समस्त दक्षिण भारत में इनकी व्यापक स्थिति है। अन्य भारतीय भाषाएँ मलियाळ, असम आदिवासियों या



विष्णार है घोर इसका एक लघु खंड गिमला पर्वत-श्रेणी तक व्याप्त है। इसे कनावरी भाषा कहते हैं। साबर भाषा साबरो (जंगली निकारिया) की भाषा है। अन्य महत्वपूर्ण भाषाएँ मतानी (बिहार, उड़ीसा बंगाल, धामाम), मुण्डारी, बिहार में रांची के पास तथा अन्यत्र तथा हो (मिहभूमि जिले में) है। मोनहंमर में मोन एक परिभाषित तथा साहित्य-मग्न भाषा थी, परन्तु अब यह द्याम, बर्मा तथा भारत के जंगली तथा आदिवासियों द्वारा बोली जाती है। इन भाषाओं के मानवी में ग्यारहवीं शती के गितानेय मिलते हैं। निबोहार द्वीप की भाषा इसी जाति की है। भारत में इनमें सम्मिश्रित भाषा धामाम प्रान्त में 'सासी' है। अब इस भाषा का रूप विकसित होकर भिन्न हो गया है।

भारतीय आर्य-भाषाओं पर मुण्डा-भाषाओं का प्रभाव—मुंडा भाषा में कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जिन में भारतीय आर्य-भाषाएँ प्रभावित हुई हैं। मुंडा के प्रभाव के कारण ही बिहार में त्रिश शब्द की व्यापक उत्पत्ति है। मुंडा की एक विशेषता दुहरे बहुवचन का उत्तम पृथक् सवनाम प्रयोग है। इनके एक प्रकार में माध्यम पृथक् को सम्मिलित कर लिया जाता है तथा दूसरे रूप में नहीं। उदाहरणार्थ—गुजराती में 'आपणे गया हुआ' का अर्थ 'हम (घोर तुम) गये थे' तथा 'आमे गया हुआ' का अर्थ 'हम गये थे' मिलता है। आ मुंडा का प्रभाव है। अनेक अणनावाचक संज्ञाओं में भी मुंडा का प्रभाव पड़ा है। 'कोरी' या 'कोला' आदि भाषा में मुंडा शब्द हुआ से आया है।

२. एकाग्र परिवार—इस निम्न-चीनी परिवार भी कहते हैं। चीनी भाषा का प्रयोग भारत में नहीं होता परन्तु निम्न-चीनी भाषा का प्रभाव उत्तर भारत में पश्चिमी प्रदेशों में होता है। इसकी तीन शाखाएँ हैं—निम्न हिमालयी, अस्म लयी तथा अस्म-बर्मी। निम्न-हिमालयी भाषा में निम्न की मुख्य भाषाएँ घोर, बाँरवी तथा हिमालय के उत्तरी क्षेत्रों की छोटी-छोटी बाँरवी पाई जाती हैं। मद्रास तथा बर्मीर में इसी प्रकार की बर्मी है। अस्म-बर्मी भाषा में बर्मी तथा अस्म के स्मिन्त की छोटी छोटी भाषाएँ मिलती हैं। जैसे मुण्डा बर्मी (उन्पून् आकाश) मद्रास, बर्मीर, मद्रास (मुण्डा का प्रभाव)। अस्मालयी भाषा का उत्तरी भाग में चीनी भाषा है।

३. भाषा की बड़ी शक्ति की लक्ष्य को प्राप्त करने के प्रयत्न हैं।



भारत में कोकणी भाषा भी इनका रूप है। इस परिवार की भारत में प्रचलित भाषाएँ तीन हैं—ईरानी, द्रविड़ और भारतीय। ईरानी भाषा का फारसी रूप अब भी साहित्यिक स्तरों में प्रयुक्त होता है। उर्दू और खड़ी बोली में भी इसके अनेक शब्द हैं। पर यह बोली नहीं जाती है। द्रविड़ भाषा को विनायक या पैशाची भी कहा गया है। भारत में अब इसका प्रभाव तमिऴ, मल्योम, राजापी और मद्रास कोकणी मराठी पर भी स्पष्ट प्रभाव होता है। काश्मीरी भाषा का विकास पैशाची अवस्था में माना जाता है। पर इस पर संस्कृत का स्पष्ट प्रभाव है।

भारतीय भाषाओं का सर्वाधिक आधिपत्य उत्तरी भारत में है। इसका साहित्य भाषा-विज्ञान की दृष्टि में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। वैदिक संस्कृत से हिंदी पर्यन्त इसका विकास अधुण चला आ रहा है जो इन भाषाओं की महानता का सूचक है। प्रियदर्शन का विभाजन भारतीय भाषाओं पर आधारित है। हिंदी का क्षेत्र बहुत व्यापक है तथा राष्ट्र-भाषा के कारण अन्य प्रांतीय भाषाओं पर इसका प्रभाव है। प्रायः परिवार का प्राचीनतम प्राभाषिक साहित्य इसी भाषा में उपलब्ध है जो भाषा-विज्ञान के लिए एक महत्वपूर्ण सामग्री का कार्य करता है। जो तो हिन्दी की बोलियों में अवधी, प्रोच, पुनवाली, धरवी आदि के शब्द भी घुलमिल गये हैं। इन दृष्टि में इनका प्रभाव दमनीय है।

५. विविध या अनिश्चित समुदाय—इसमें कुछ भारत में बोली जाने वाली वे भाषाएँ आती हैं जिनको किसी वर्ग या परिवार में रखना या रूप के आधुनिक सम्बन्ध के कारण नहीं रखा जा सका है। तुमरी भाषा का सम्बन्ध कुछ विद्वानों ने द्रविड़ और मोन्गोलोइड की सम्बन्ध में स्थापित किया है। दो भाषाओं का क्षेत्र भारत में है उनमें एक घटनी है। यह घटनी द्वीप की भाषा है। दूसरी 'बुरगारकी' या खजुना है। इसका क्षेत्र पारसी के उत्तरी पूर्वी कोने पर है। द्रविड़ या आस्ट्रिक से इसका सम्बन्ध सूत्र स्थापित करने का प्रयास निष्फल हुआ है।

प्रश्न २८—मूल (मूल) भारतीय भाषा की संस्कृत भाषा के साथ तुलना करने हुए उसकी प्रारम्भिकता, प्रविष्टि और उदासीन स्वर (neutral vowel) की स्थापना पर प्रकाश डालिए।







भारोपीय परिवार की समस्त शाखाओं में कुछ ऐसी निकट समानताएँ हैं, जिनके कारण इन्हें एक परिवार में सम्मिलित किया जाता है। उदाहरणार्थ—

संस्कृत    ग्रीक    लैटिन    जर्मन    अंग्रेजी    स्लावोनिक    गारिड

१. पितृ (पितर), पतेर, (pater), पतेर, वातेर (vater), फादर (father)
२. भरानि, फेरो (Phero), फेरो (fero) — बौयर (Bear), बेरिन (beran),
३. लूकान, लूकोउस (lukous lukons) लुपोस (lupos) वुल्फम (wulch),  
वल्फोन्स (wulwogs)

बाङ्गमय में प्रयोग रामायण-काल । लेकर भुगत-काल तक रहा । इस भाषा के अगणित शब्द समीपवर्ती देशों के भाषा, तिब्बती, चीनी, जापानी आदि में सुनिहित हो गये । संस्कृत का साहित्य विद्वद के सर्वांगिक नम्रन्म साहित्यों में से एक है । इसने अनेक भाषाओं को अनेक दृष्टियों से प्रभावित किया है ।

संस्कृत और अवेस्ता में साम्य—आर्य-भाषाओं में एक प्रकार से अनुकृता तथा व्याकरण की दृष्टि में अत्यन्त सान्निध्य की भावना मिलती है, जो इसे अन्य भाषाओं से पृथक् करती है । दोनों भाषाओं का तुलनात्मक साम्य निम्न दृष्टि बिन्दुओं में देखा जा सकता है ।

(१) ध्वन्यात्मकता की दृष्टि से आर्य भाषा की इन दोनों भाषाओं—संस्कृत और अवेस्ता में प्राचीन भारोपीय ऐ, ओ, अ का भेद नहीं रहा है । समस्त भारोपीय मूल स्वर ॐ अ, ॐ ऐ और ॐ ओ (ह्रस्व या दीर्घ) आर्य-भाषाओं में 'अ' (ह्रस्व या दीर्घ) संस्कृत अ या आ हो जाते हैं, परन्तु ग्रीक आदि में इनका भेद बना रहा है । उदाहरणार्थ—

भारोपीय	संस्कृत अवेस्ता	ग्रीक	लैटिन
● नेभास (ne'bhos), नभस, नबह	नेफोस (nephos), नेबुला (nebula)		
● ओस्य (osib), अस्ति, स्व (ast), ओस्तेमोन (oste'on), os			
● एपो (apo), आपम्, अय	एपो (apo)	—	
● ऐक्वोस (ekwos) अरव, अस्पो (aspo), हेप्पोस (heppos), ऐक्वम् (epuus)			

(२) भारोपीय उदासीन स्वर अ (स्व a) दोनों भाषाओं में 'इ' हो जाता है । परन्तु यह विचार अधिकतर ग्रीक ध्वनि दीर्घ स्वर ए, ओ, आ के अपभ्रुति अनेक रूप में आर्य वर्ण में 'अ' के स्थान में इ हो जाता है । उदा—

भारोपीय	स०	अ०	ग्री०	लै०
पेटे (pate) पिता	पिता	पानेर (pater) पंटर		
पेटे (dhe) धातु से हिट	धेतोस् (thetos)			

(३) संस्कृत, अवेस्ता में 'र' (ॠ) और 'ल' (ॡ) मूल भारोपीय ध्वनिनी अभिव्यक्ति हो जाती है । भारोपीय भाषा में इन दोनों में अधिक भेद नहीं था



साङ्गम्य में प्रयोग रामायण-काल । लेकर मुगल-काल तक रहा । इस भाषा के अगणित शब्द समीपवर्ती देशों के भाषा, तिब्बती, चीनी, जापानी आदि में प्रसिद्धि हो गये । संस्कृत का साहित्य विश्व के सर्वाधिक सम्पन्न साहित्यों में से एक है । इसने अनेक भाषाओं को अनेक दृष्टियों से प्रभावित किया है ।

संस्कृत और अवैस्ता में साम्य--आर्य-भाषाओं में एक प्रकार से अनुकूलता तथा व्याकरण की दृष्टि से अत्यन्त सान्निध्य की भावना मिलती है, जो इसे अन्य भाषाओं से पृथक् करती है । दोनों भाषाओं का तुलनात्मक साम्य निम्न दृष्टि सिन्दुओं में देखा जा सकता है ।

(१) ध्वन्यात्मकता की दृष्टि से आर्य भाषा की इन दोनों भाषाओं—संस्कृत और अवैस्ता में प्राचीन भारोपीय ऐ, ओ, अ का भेद नहीं रहा है । समस्त भारोपीय मूल स्वर **●**अ, **●**ऐ और **●**ओ (ह्रस्व या दीर्घ) आर्य-भाषाओं में 'अ' (ह्रस्व या दीर्घ) संस्कृत अ या आ हो जाने है, परन्तु ग्रीक आदि में इनका भेद बना रहा है । उदाहरणार्थ—

भारोपीय	संस्कृत अवैस्ता	ग्रीक	लेटिन
<b>●</b> नेभास (ne'bhos), नभस, नबह		नेफोस (nephos), नेबूला (nebula)	
<b>●</b> ओस्थ (osth),	अस्थि, स्त (ast), ओस्तेमोन (oste'on), os		
<b>●</b> एरो (apo),	आपम्, अप	एपो (apo)	—
<b>●</b> ऐक्वोस (ekwos)	अस्व, अस्वो (aspo), हेप्पोस (heppos), ऐक्वम् (epuus)		

(२) भारोपीय उदासीन स्वर अ (या a) दोनों भाषाओं में 'इ' हो जाता है । परन्तु यह विचार अधिकतर ग्रीक ध्वनि दीर्घ स्वर ए, ओ, आ के अपभ्रंशित जनक रूप में आर्य बर्णों में 'अ' के स्थान में 'इ' हो जाता है । यथा—

भारोपीय	स०	अ०	ग्री०	ले०
पठे (pate)	पिता	पिता	पातेर (pater)	पैटर
धे (dhe) धातु से हिज			पेटोम् (thetom)	

(३) संस्कृत, अवैस्ता में 'र' (ऋ) और 'ल' (ऌ) मूल भारोपीय ध्वनियों अतिवर्धित हो जाती है । भारोपीय भाषा में इन दोनों में अधिक भेद नहीं था









घौर परे इ, ए स्वर के होने पर च्, छ्, ज्, झ् हो गये ।

(६) सस्कृत तथा अवेस्ता में समान रूप तथा समानार्थी अनेक शब्द हैं, जैसे सस्कृत योजस् का अवेस्ता में भोजः, अनु-अन्य, का अनुअन्य ददामि का ददामि आदि ।

(१०) दोनों भाषाओं की रूप-रचना तथा सघटना इतनी समान है कि अवेस्ता की गाथा की भाषा को कतिपय ध्वनि नियम सम्बन्धी परिवर्तनों के आधार पर वैदिक सस्कृत के रूप में बदला जा सकता है । उदाहरणार्थ—

अवेस्ता = सस्कृत

मूर दामोह् दाविस्तम् = मूरं धाममु दाविष्टम् । आदि ।

सस्कृत तथा अवेस्ता में अन्तर—दोनों के कुछ स्वरों में अन्तर भी है ।

(१) सस्कृत में टवर्ग है जबकि अवेस्ता में नहीं है ।

(२) भारतीय में खर्ग (क्, छ्, ज्, झ्, ञ्) ध्वनियाँ हैं, जबकि ईरानी में केवल फ् तथा ज् हैं ।

(३) पाचो वर्गों के द्वितीय घौर चतुर्थ महाप्राण वर्ण अवेस्ता में नहीं है ।

(४) अवेस्ता में 'र' के स्थान पर 'र' ध्वनि है जैसे धीर = गीरो ।

(५) ईरानी में खरो वा बाहुल्य है । भारतीय 'घ' 'घा' की जगह उसमें घाठ खर हैं ।

(६) सस्कृत वा अवेस्ता में घर्, र् या घ है । जैसे, वृधम् = वरेजेम्, धेष्ट = गराज् ।

(७) सस्कृत षोडश महाप्राण फ्, थ्, भ् ईरानी में अल्पप्राण ग्, द्, ब् प्राण होते हैं । यथा—

भूमि = बुमि (bumi), धेनु = देनु (daenu), घर्म = गर्म (garm),

(८) सस्कृत के अषोडश अल्पप्राण क्, त्, प् तथा अषोडश महाप्राण क्, ख्, फ् ईरानी में माध्य या सघर्षी ग्, फ्, फ् हो गये हैं । जैसे—बन्धा—गन्धा (gandha), स्वप्न—हवन्दम् (havandam), गन्ध—हवन्धो, शब्द—सब्द (sadda) यथा—सद्वा (sadda), गन्धा—हव (havandam)

(९) अवेस्ता में अनेक शब्दों की अवेस्ता में सस्कृत की ध्वनि अतिरिक्त है—



प्रश्न २६—वाक्य क्या है? प्राकृत, पालि की भाषागत विशेषताएँ बताइये और इनका सम्बन्ध संस्कृत तथा आधुनिक भारतीय भाषा-भाषाओं से निर्धारित कीजिये।

**धृष्टका**

‘संस्कृत प्राकृत भाषाओं से जननी है’ इस कथन का युक्ति युक्त उत्तर दीजिए।

पाणि तथा प्राकृत दोनों ही भारतीय भाषाओं का उन्मुख वैदिक मध्यम के पश्चात् होता है। सर्वप्रथम हम पाणि के विषय में विवेचन करते हैं। मध्यम आर्य-भाषाओं के प्रथम नृप श्री महन्वज्जुल भाषा 'पाणि' है तथा इसका समय छठी सताब्दी ई० पू० से पहली सती ईसवी तक माना जाता है।

वालि का नामकरण

[illegible]



पालि' भाषा में तद्भव शब्दों का बाहुल्य है। तत्सम तथा देशज अपभ्रंशाकृत शब्दों में कम हैं। संगीतात्मक स्वराघात की स्थिति इस भाषा में अनिश्चित होती है। प्रियसैन के मतानुसार इनमें केवल अलात्मक स्वराघात था। लिंग भीन थे। द्विवचन तथा घातनेरद रूप कम ही थे। 'पालि' में स्वर-परिवर्तन संस्कृत की अपेक्षा अधिक था।

प्राकृत भाषाएँ—हेमचन्द्र के अनुसार प्राकृत की उत्पत्ति संस्कृत में हुई है। नमि माधु सामान्य लोगों के वचन-व्यापार की प्राकृत का आधार मानते हैं। प्राकृत की व्युत्पत्ति 'प्राक् + कृत' (अर्थात् संस्कृत से पूर्व बनी हुई) से मानते हैं। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि एक भाषा का संस्कार करके उसके रूप को सम्युक्त नाम दिया गया, वह भाषा जो असंस्कृत थी और पंडितों या विद्वानों में प्रचलित इस भाषा के विरुद्ध जो 'प्राकृत' या सामान्य लोगों में सहज रूप में बोली जाती थी, स्वभावतः 'प्राकृत' नाम की अधिकारिणी बन गई। पालि-बाल की समाप्ति पर लोक-भाषा का यही रूप प्रचलित था।

शिला-लेखी प्राकृत—यह पालि भाषा के समकालीन थी। अशोक के शिलालेखों की प्राकृत को प्रतीकीय प्राकृत कहते हैं। अशोक ने स्तम्भों और चट्टानों पर राज्य के विभिन्न भागों में शासन तथा धर्म सम्बन्धी सिद्धान्त ब्राह्मी तथा खरोष्ठी लिपि में अभिलेख रूप में बीस से अधिक खुदवाये थे। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से इन अभिलेखों का बड़ा महत्व है। इनसे ई० पू० तीसरी सदी के लगभग मध्य भाग की भाषा के विभिन्न स्वस्वों का ज़िन्हे चलती प्राकृत कहा जाता है, परिचय मिल जाता है। विद्वानों के अनुसार इनकी पाँच बोलियाँ थीं। यही म, म्, प् तीनों रूप प्राप्त होते हैं और वहीं पालि की भाँति 'स' ही। र, ल, य, ण् के प्रयोग में पर्याप्त अन्तर है। इसमें रूप कम है। ये पालि की भाँति हैं।

प्राकृतों के भेद

प्राकृतों के प्रचार के विषय में पर्याप्त मत-भेद हैं। विद्वानों ने बीस से अधिक प्राकृतों का उल्लेख किया है, परन्तु भाषा की दृष्टि से प्रमुखतः पाँच भेद ही माने जाते हैं—(१) पौरसेनी, (२) वैजाची, (३) महाखण्डी, (४) धर्म मागधी तथा (५) मागधी।



४. **अट्ट' मागधी**—इसका क्षेत्र मागधी घोर दोरमेनी का मध्यवर्ती प्रदेश है। यह प्राचीन कोशल के घामपास की भाषा है। नाटकों तथा जैन-साहित्य में गद्य-पद्य दोनों रूपों में इसका प्रयोग हुआ है। जैनियों ने इसे 'घाटो' या 'घादि-भाषा' कहा है। इसका प्राचीनतम प्रयोग अट्टवर्षोप के नाटकों में मिलता है। ग, घ के स्थान पर 'स' तथा चवर्ग के स्थान पर कड़ी-कड़ी तवर्ग मिलता है। इन्द्र ध्वनियाँ मूर्द्धन्त्य हो गई हैं। यथा धावक = गावक, स्थित = ठिप्र।

५. **मागधी**—मागधी प्राकृत मगध के घाम-पास की भाषा है। लका में पाली को ही मागधी कहा है। इसका उद्भव दोरमेनी से माना जाता है। संस्कृत नाटकों में निम्न श्रेणी के पात्र इसका प्रयोग करते हैं। गौडी, गावरी, चाण्डाली आदि इसके अनेक भेद हैं। इस प्राकृत में म, प, के स्थान पर 'दा' तथा 'र' संबंध 'ल' हो जाता है, यथा, सप्त = दात, पुरुष = पुलिश, राजा = लाजा। स्व' घोर 'यं' के स्थान पर 'स्त' मिलता है। जैसे उपस्थित = उरस्थित, धर्मवती = पस्तवती।

**प्राकृत की कुछ सामान्य विशेषताएँ**—प्राकृत भाषाएँ ध्वनि की दृष्टि से पालि के अधिक सन्निकट हैं। इसमें भी ह्रस्व ए, ओ, ऊ, लृ का प्रयोग चलता रहा। ए, ओ, ऋ, लृ का प्रयोग नहीं हुआ। प्राकृत में तीनों ऊष्म दा (मागधी, पेशाची आदि) प (पेशाची) तथा स (अधमागधी) में मिलती है तथा वही-वही पर यह दूसरी ऊष्मध्वनि में परिवर्तित हो गई हैं। भागधी में 'र' का 'ल' 'ज', का 'य' पाया जाता है। अन्य प्राकृतों में 'य' का सामान्यतः 'ज' तथा 'र' 'ल' का परस्पर परिवर्तन में देखने में आता है। इन प्राकृतों में स्पर्श घोष सघर्ष व्यंजन भी थे, यथा ग, घ, ध, ज आदि प्राकृतों में 'ज' का विकास प्रायः 'ण' हो गया है। प्राकृतों में व्यंजनान्त शब्द नहीं हैं। घल्पप्राण स्पर्शों का स्वर मध्यम होने पर लोप तथा महाप्राण स्पर्शों का मध्यम होने पर 'ह' में परिवर्तन हो जाता है। संस्कृत में विभक्त ( ) के स्थान पर प्रायः ए, ओ या 'म' का 'ज' रूप घोर घोष स्पर्शों का अघोष तथा अघोष का घोष में परिवर्तन हो जाता है। समीपकरण, लोप, स्वरभक्ति ध्वनि-परिवर्तन की प्रवृत्तियाँ अधिकतर महाराष्ट्री तथा मागधी भाषाओं आदि में मिलती होती हैं। 'नीय' प्राकृत के प्रतिरिक्त अन्य प्राकृतों में द्विवचन का रूप दृष्टिगत नहीं























गभग वेकर का वर्गीकरण भी इसी प्रकार का है।

श्री सीताराम चतुर्वेदी ने मध्यन्ध-भूतक परसर्ग (विभक्ति या कारक) के आधार पर वर्गीकरण किया है। यथा—१ दा (हिन्दी, पहाड़ी, जयपुरी तथा जेजुरी)। २. दा (पञ्जाबी और लहँदा) ३ जो (निधी, कच्छी) ४. नो गुजराती) तथा ५. एर (अगाली, उडिया, आसामी) वर्ग बनाए हैं। यथायंत, हम कोई वर्गीकरण है नहीं।

‘जममूर्ति मलहोत्रा का ‘आदर्श-वर्गीकरण’

(क) पश्चिमी भाषाएँ—१ छिधी, २ पञ्जाबी, ३ लहँदा, ४ राजस्थानी ५. गुजराती, ६. मराठी तथा पहाड़ी।

(घा) केन्द्रीय भाषाएँ—पश्चिमी हिन्दी।

(ङ) पूर्वी भाषाएँ—८ पूर्वी हिन्दी, ९. बिहागी, १०. बंगाली, ११ उडिया तथा १२. आसामी।

एक वर्गीकरण डा० भोलानाथ तिवारी ने प्राकृत के आधार पर किया है। इन वर्गीकरण से आर्य-भाषाओं को वैज्ञानिक परिचय मिलता है।

प्रश्न २८—भारत की प्राचीन भाषाओं का तारतम्य दिखाते हुए हिन्दी के विकास पर प्रकाश डालिये।

अथवा

हिन्दी भाषा की उत्पत्ति के क्रमिक इतिहास का स्पष्ट चित्रण कराइये।

वैदिक सभ्यता ही सभी भारतीय आर्य-भाषाओं का मूल-स्रोत मानी जाती है। लौकिक सभ्यता का जन्म यहीं से हुआ है। भारतीय साहित्यिक समृद्धि और प्रतिष्ठा के कारण इस भाषा ने विश्व में अमर स्थिति प्राप्त कर ली है। बौद्ध और जैन धर्म का विकास उस समय की प्रचलित लोक-भाषा में हुआ। उसका नाम पाली बिहारा हुआ। आर्य उनकर यही रूप विभिन्न प्राकृत भाषाओं के रूप में बिखरित हो गया। सभ्यता पाली तथा प्राकृत में साहित्य की रचना होने के कारण संसारभर ने उन्हें व्याकरण के नियमों में बाँध दिया। जनसंख्या उसका प्रच-भाषा बन बिनीन होकर उसका स्वाभाविक प्रवाह तथा विकास एक १००० ई. पू. प्राकृत की नवीन बोलियाँ पहचानि होकर प्रचलित



प्राचीन रूप से इसमें अनेक परिवर्तन हो गये हैं। हिन्दी के विकास की दृष्टि हिन्दी को तीन कालों में विभक्त किया गया है—

१. प्राचीन काल (१५०० ई० तक)।
२. मध्यकाल (१५०० से १८०० तक)।
३. आधुनिक काल (१८०० से अब तक)।

**प्राचीनकाल—**हिन्दी भाषा के प्रारम्भिक रूप तथा सामग्री का दर्शन हमें तीन राज्यों में उपलब्ध होता है—दिल्ली, बनौज तथा अजमेर। इन राज्यों में परस्पर फूट और घरेलू युद्ध होने रहते थे। दिल्ली में चौहान वंश के राजा पृथ्वीराज चौहान का शासन था और उनका राजकवि चन्द था। राठौर वंश की राजधानी बनौज के अन्तिम सम्राट् जयचन्द का दरबार साहित्यिक चर्चा का मुख्य केन्द्र था तथा संस्कृत तथा प्राकृत भाषा को अधिक उमादर प्राप्त था। महाकाव्य नैषधीय-चरित के रचयिता श्री हर्ष जयचन्द के राजकवि थे। महोबा का राजकवि जगन्नाथक या जगन्निक तथा अजमेर के नरसिंह नाटह का नाम आदर से लिया जाता है। अधिकांश वाङ्मय के नष्ट हो जाने से उसके मूल-रूप का परिचय प्राप्त नहीं हो पाया है। ११६१ ई० में पृथ्वीराज और जयचन्द की पराजय से दिल्ली, बनौज और महोबा पर जो हिन्दी के तीन केंद्र थे, मुहम्मद गौरी के आधिपत्य के कारण मुलमानों का शासन स्थापित हो गया था। इस प्रकार प्रायः समस्त हिन्दी प्रदेश विदेशी शासकों के अधिकांश में था। इस कारण हिन्दी भाषा के शिलालेख और ताग्रपत्रों की संख्या न्यूनतम है, केवल पृथ्वीराज तथा समरसिंह राज दरबार से सम्बन्धित हिन्दी के कुछ प्राचीन नमूने प्राप्त होते हैं परन्तु वे प्रामाणिक नहीं माने जाते हैं।

सिद्ध तथा नायपरी बहियों का वाङ्मय (समय ७०० ई० से ११०० ई० तक) का प्राप्त होता है परन्तु इस सामग्री की प्राचीनता तथा प्रामाणिकता अभी सन्देह है। सिद्ध-साहित्य की भाषा अरभञ्ज भाषा ही मानी जाती है। गोरखनाथ की गोरखबाणी प्रसिद्ध है। गुलेरी जी के 'पुरानी हिन्दी' लेख में उद्धृत हिन्दी का अरभञ्ज भाषाओं से प्रभावित राजस्थानी का ही एक नमूना है। भाग्य व विनो आधिपत्य से पराजित पारसी और तुर्कों की और जनता की रचि आधुनिक हुई तथा संस्कृत और हिन्दी की उदया की दृष्टि से

























हिन्दी में कम है। खटखटाना, धमकाना आदि कुछ ऐसे भी शब्द हैं जो तत्सम बड़े जा सकते हैं पर वास्तव में हैं नहीं।

तत्समानास—कुछ शब्द संस्कृतजो के गढ़े चले आ रहे हैं और तत्सम समान प्रतीत होने हैं। जैसे—राष्ट्रीय, पौगणिक, उन्नायक, श्राप, प्रण आदि।

अर्धतद्भव या तद्भुवानास—हिन्दी शब्द-समूह में कुछ ऐसे भी शब्द हैं जो लिंग-परिवर्तन में सादृश्य के अनुसार बना लिए गए हैं। जैसे—मोसी का पुल्लिंग मोसा। यह तद्भव का ही रूपान्तर मात्र है। अन्य उदाहरण दुलहन आदि हैं।

प्रतिष्थान्यात्मक—कभी-कभी किसी शब्द के सादृश्य या सम्बन्ध बोध करने के लिए तथा प्रभाव डालने के लिए भावृत्ति कर दी जाती है, यथा—लोटा-भोटा, रोटी-फोटी आदि।

द्विज शब्द—हिन्दी में अनेक ऐसे शब्द हैं जो दो भाषाओं के शब्दों में समास करने पर बने हैं। उदाहरण—सरदार, रेलगाड़ी, प्रजायवधर।

हिन्दी शब्द-समूह पर अन्य आधुनिक आर्य-भाषाओं का भी प्रभाव पड़ा है और उन प्रान्तीय भाषाओं के शब्द यथा स्थान हिन्दी में प्रवेश पा गये हैं।

उदाहरणार्थ—मराठी—प्रगति, लागू, खालू, बाबू। गुजराती—पड़ताल आदि।

२. भारतीय अनार्य-भाषाओं से आगत शब्द—हिन्दी के तत्सम तथा तद्भव शब्दों में कुछ रूप ऐसे हैं जो प्राचीन काल में अनार्य-भाषाओं से आर्य-भाषाओं में आ गए थे। जिन प्राकृत शब्दों की व्युत्पत्ति संस्कृत शब्दों से नहीं हो पाती है उनको भी हम अनार्य-भाषाओं से आए मान लेते हैं और ऐसे अनेक शब्द द्रविड़ तामिल, तेलुगू, कोल आदि अन्य भाषाओं में उपलब्ध होते हैं। ऐसे शब्दों की मात्रा हिंदी में गूँजत है। द्रविड़ भाषाओं से आए शब्दों का शब्द हिंदी में बहुत कुछ बदल गया है। पुनराची द्रविड़ 'विले' हिंदी में 'विल्ला' होकर बुने के बच्चे का शब्द देता है। हिंदी में मूर्खत्व बर्णों (टकार) का आगमन द्रविड़ भाषाओं के प्रभाव के कारण है। हिन्दी का यमनावाचक 'बोरी' द्रविड़ कोल भाषाओं से आया है।

३. विदेशी भाषाओं के शब्द—ये शब्द भारत में विदेशी शासन के फल-













रूप	एकवचन	बहुवचन
पुं० घोड़ा—मूल रूप (कर्ता)	घोड़ा	घोड़े
विकृत रूप (अन्य कारक)	घोड़े	घोड़े
स्त्री० लडकी—मू० ल० (कर्ता)	लडकी	लडकियों, लडकियाँ
वि० ल० (अन्य कारक)	लडकी	लडकियों इत्यादि

कुछ भाषारान्त एक वचन शब्दों में भी कर्ता के अनिश्चित अन्य कारकों में एकारान्त विकृत रूप उपलब्ध होना है जैसे ऊपर कर्ता एकव० 'घोड़ा' अन्य कारक में एकारान्त एकव० 'घोड़े' रूप में परिवर्तित हो गया है। इन विकृत रूपों के विषय में यह मत है कि ये संस्कृत की भिन्न-भिन्न विभक्तियों के एक वचन रूपों का अवशेष मात्र हैं।

प्रायः यह देखा जाता है कि हिन्दी सज्ञाओं के मूल तथा विकृत रूपों में 'घो' लगाने से पूर्व ईकारान्त और ऊकारान्त शब्दों में 'ई' और 'ऊ' के स्थानों पर क्रमशः 'इ' और 'उ' कर दिया जाता है। स्त्रीलिंग के अन्त रूपों में ईकारान्त या ईकारान्त तथा ऊकारान्त सज्ञाओं के मूलरूप बहुवचन में 'घो', 'हैं' तथा 'उरें' रूप बन जाते हैं। सज्ञा के मूल तथा विकृत रूपों में सामान्यतः समस्त सम्भावित परिवर्तन इस प्रकार दिए जा सकते हैं—

	पुंलिंग		स्त्रीलिंग	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
अकारान्त				
मूल रूप	घा	ए	×	एँ
विकृत रूप	ए	घो	×	घो
अन्य रूप				
मूल रूप	×	×	×	एँ, घाँ
विकृत रूप	×	घो	×	घो
लिंग				

भाषाईक यह तथा चेतन पदार्थों के अनुसार लिंगों का वर्गीकरण प्राचीन तथा आधुनिक काल से तीन वर्गों में विभाजित किया गया। पुरुषपदार्थ पदार्थों, स्त्रीपदार्थ पदार्थों तथा लिंग पदार्थों के बिना पदार्थों की समता













संश्लिष्ट हो हो है।

२. कर्म तथा सम्प्रदान कारक—हिन्दी में कर्म तथा सम्प्रदान के लिए एक ही प्रकार के कारक-चिह्नों का व्यवहार किया जाता है। खड़ी बोली में 'को' चिह्न दोनों विभक्तियों में प्रयुक्त होता है तथा 'के लिए' विशेषतः सम्प्रदान में आता है।

बो—टुम्प के पत में इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत शब्द 'कृत' से है। इसका विकास-क्रम इस प्रकार है—कृत > कितो > किमो > को। इसी प्रकार कृत से 'बहु' की उत्पत्ति ऋ लोप के अनन्तर 'त' ध्वनि का महाप्राणीकरण (ह) है। प्राकृत में कत और कद रूप भी मिलते हैं।

हान्सी, बोम्स तथा पेंटर्जो आदि विद्वान् 'बो' की उत्पत्ति संस्कृत 'कक्ष' से मानते हैं, यथा—कक्ष > कक्ष > काक्ष > काह > बहु > बह > बो > को। 'कक्ष' का अर्थ समीप या घोर के रूप में ग्रहण किया जाता है।

के लिए—के का सम्बन्ध संस्कृत 'कृते' घोर लिट् वा 'लभे' लृटि > लभे से जोड़ा जाता है। हिन्दी बोलियों में इसी अर्थ में 'लामि', 'लमे' चिह्न प्रयुक्त होते हैं। तत्त्वज्ञान वर्मा के मतानुसार 'के', 'बो' कारक चिह्नों को सम्बन्धवाचक प्राचीन सिन्धु 'वेरक' का रूपान्तर मानते हैं। हान्सी 'लिए' की व्युत्पत्ति 'लम्बे' (लम्बायें) से मानते हैं। पर अन्तिम दोनों मत सर्वमान्य नहीं हैं। हान्सी ने अन्य हिन्दी की कुछ सामीप्य बोलियों के मुख्य शब्दों की व्युत्पत्ति इस प्रकार से दी है—

हिन्दी बोली	अपभ्रंश रूप	प्राकृत रूप	संस्कृत शब्द
टाई	टाणि	टाणे	स्थाने
पाहि	पाखे	पहि	पथे
बन	बणे	—	अर्थ
बाब	बाखे	बाखे	बाबे
ताई, तई	तराए	तरिए	तरित
बोट	बहु	बहु	कार्त
बर	—	—	बर

३. उपकरण तथा असाहाय कारक—हिन्दी भाषा में इन दोनों कारकों का



सज्ञाओं के स्थान पर सर्वनामों का प्रयोग किया जाता है अतः इनके रूप क विभक्तियों में सज्ञा रूपों के समान चलते हैं। इनको छाठ भागों में शक्ति किया गया है। सक्षिप्त रूप में उनकी व्युत्पत्ति नीचे दी जाती है।

१. पुरुष वाचक सर्वनाम—इसके तीन भेद हैं—उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष तथा अन्य पुरुष। अन्य पुरुष का विवेचन निश्चयवाचक के साथ किया जाएगा।

उत्तम पुरुष—इनके निम्न मुख्य रूपान्तर हैं—

	एकवचन	बहुवचन
भूतरूप	मैं—	हम
विकृतरूप	मुझे (मुझ) —	हमें
सम्बन्ध कारक	मेरा—	हमारा

मैं—इसका सम्बन्ध अहं से न होकर संस्कृत तृतीय रूप 'मया' से निर्धारित किया गया है। इसका विकास मया > प्रा० मई (मए) > षप० मई > हिन्दी मैं, है। मैं की धनुस्वार ध्वनि तृतीया 'एन' के प्रभाव से है।

मुझ—इसका उद्भव संस्कृत 'मह्य' से माना जाता है। जैसे मह्य > मज्ज > मझ > मुझ। मझ से मुझ की रचना तुझ के सादृश्य पर हुई है। कुछ विद्वान् इसका विकास प्राकृत रूप मह से मानते हैं। इसी का रूप मैं के आधार पर मैं है।

मेरा रूप 'मस्मे' से है जो वैदिक 'मस्मे' का

विकास भूतला का

महई से स्थिर किया

संस्कृत मह से है।

ही (वज्र)।

का सम्बन्ध प्राकृत रूप

मे यही रूप महारो

करी, करो प्रत्यय है।



इस—इसका विकास मस्कृत अस्य, प्राकृत एअस्म से माना जाता है।  
 चंटवों 'इस' का अनुमान मस्कृत एतस्य से करते हैं।

इन—यह रूप एतेन > एदिण > एदणा से सदिध है। 'न' में पठ्ठी बहु-  
 वचन का प्रभाव दृष्टिगत होता है। इसे, इन्हें मूल रूपों के विवृत रूप हैं।

वह—इसकी व्युत्पत्ति अनिश्चित है। तद् रूपों से इनका यथार्थ सम्बन्ध  
 नहीं है। चंटवों के मतानुसार मस्कृत के कल्पित रूप 'अव' > प्राकृत 'ओ'  
 से वह की उत्पत्ति है। 'अव' और 'ओ' रूप ईरानी और दरद भाषाओं में भी  
 मिलता है। 'उस' का सम्बन्ध प्राकृत अउस्स तथा मस्कृत अवस्य से जोड़ा जा  
 सकता है। इसी प्रकार वे और इन का अनुमान किया जा सकता है। इसे,  
 इन्हें विवृत रूप हैं।

३. अनिश्चयवाचक सर्वनाम—इसके मुख्य रूपान्तर इस प्रकार हैं।

	एक०	बहु०
मूल रूप	कोई	कोई
विवृत रूप	किसी	किसी

कोई—इसकी व्युत्पत्ति मस्कृत 'कोऽपि' से है। प्राकृत में कोवि तथा  
 हिन्दी में कोई बन गया। प से व और वइ हो जाना प्रणि-नियमों के  
 अनुकूल है।

किसी—मस्कृत दास्य 'कस्यापि' का ही रूपान्तर हिन्दी का किसी है। किसी  
 रूप की व्युत्पत्ति सदिध तथा अनिश्चित है।

कुछ—इसका सम्बन्ध मस्कृत 'कश्चिद्' से माना जाता है। प्राकृत में इस  
 का 'कुच्छ' रूप मिलता है।

४. सम्बन्धवाचक सर्वनाम—हिन्दी सम्बन्धवाचक सर्वनाम के प्रमुख निम्न  
 रूप हैं—

	एक व०	बहु व०
मूल रूप	जो—जो	
विवृत रूप	जिसे जिसे	जिन, जिन्हें।

जो—यह तो संस्कृत 'यः' का रूपान्तर है। य > जो > जो।

जिसे—इसका सम्बन्ध संस्कृत दास्य से है। दास्य > जिसे > जिन।





ध्वनि-परिवर्तन हो जाता है। हिन्दी की बोलियों में कौन के स्थान पर 'को' रूप भी मिलते हैं। इसकी उत्पत्ति स्पष्टतः संस्कृत 'कः' से है।

किस—संस्कृत कस्य > प्राकृत कस्य > किस।

किन—इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत कानां या बाणां (केषां) कल्पित रूपों से मानी जाती है। जैसे—सं० काना > प्रा० केषा > केना > किन। किसे, किन्हें रूप अन्य प्रचलित रूपों के समान हैं।

क्या—हिन्दी 'क्या' की उत्पत्ति अनिश्चित है। कि से इसका सम्बन्ध अभी विचारणीय है।

प्रश्न ३५—हिन्दी क्रिया के कालों में संस्कृत कालों के कौन से रूप अवलोक्य रह गये हैं। दोनों का सम्बन्ध स्थापित कीजिये।

या

हिन्दी क्रियाओं की व्युत्पत्ति बताइये।

संस्कृत भाषा की सबसे बड़ी विशेषता उसका सयोगात्मक होता है। अनेक रूपों की भाँति कुछ अववादों को छोड़कर प्रायः संस्कृत क्रियाएँ सयोगात्मक ही थीं। छ. प्रयोग, दस शाल, तीन पुरुष और तीन वचन के अनुसार प्रत्येक संस्कृत धातु के  $१४०$  ( $६ \times १० \times ३ \times ३$ ) भिन्न-भिन्न रूप मिलते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक की ध्वनिक व्याकरणिक विशेषता के फलस्वरूप रूप-साम्य भी नहीं पाया जाता है। इस विशेषता के कारण संस्कृत की लगभग दो हजार धातुओं की व्याकरणिक आदि दस गणों में विभक्त कर दिया गया है। गणों की धातुओं के रूप में परस्पर अधिक भेद पाया जाता है। इसलिए संस्कृत धातु रूप अधिक जटिल और दुर्बुद्ध है।

मध्यकालीन आर्य-भाषाओं में धातुरूप—रचना की दृष्टि से समयानुक्रम स्वरूप होने लगे थे। मध्यकालीन आर्य भाषाओं में क्रिया तीसरी सयोगात्मक ही रही परन्तु रूपों की संख्या संस्कृत की तुलना में कम हो गई थी। व्याकरण में धातुओं की संख्या अधिक होने से और उपयोगिता की दृष्टि से इसका प्रभाव अन्य वचनों पर भी पड़ा। यह परिवर्तन हमें पालि भाषा में दृष्टिगत होने लगा था। संस्कृत विशेषण का पालि में लोप हो गया और छः प्रयोगों में से परस्मैपद का प्रभाव अधिक बढ़ जाने से पालि ही प्रयोग पालि में ध्वनिष्ठ रहे। इससे लक्ष्यों की



हिन्दी की धातुएँ—हान्सी ने गणना कर हिन्दी की धातुएँ पाच सौ मानी ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी धातुओं के दो रूप हैं—मूल धातु तथा योगिक । संस्कृत से हिन्दी में आने वाली धातुएँ मूल कही जा सकती हैं । हान्सी मुझर इनकी संख्या ३६३ है । कुछ मूल धातुएँ संस्कृत धातुओं से स्वरूप दृष्टि से साम्य रखती हैं । यथा हिन्दी की 'खा' तथा संस्कृत की 'खाद्' में अन्तिम साम्य है । कुछ धातुओं में संस्कृत के किसी विशिष्ट गण का प्रभाव पड़ा है या प्रायः गण-परिवर्तन हो जाता है । उदाहरणार्थ हि० नाच < सं० नच + घादि ।

(क) मूल धातु—मूल धातुओं को चार वर्गों में रक्खा जाता है—

१. वे हिन्दी की मूल धातुएँ जो प्राचीन भारतीय भाष्य-भाषाओं (प्रा० भा० धा०) से क्रमगत आई हैं तथा उनका सम्भवतः तद्भव रूप ही मिलता है ।

२. वे मूल धातुएँ जो प्रा० भा० धा० की धातुओं के प्रेरणार्थक रूपों से विकसित हुई हैं । इनका भी प्रायः तद्भव रूप मिलता है ।

३. वे मूल धातुएँ जो आधुनिक काल में सीधे संस्कृत से ली गई हैं । वे तत्सम या घट्ट-तत्सम रूप में हिन्दी में सक्षिप्त होती हैं ।

४. वे मूल धातुएँ जिनकी व्युत्पत्ति सदिष्ट है, पर रूप की दृष्टि से संस्कृत धातुओं के सदृश प्रतीत होती हैं ।

(ख) योगिक धातु—हिन्दी योगिक धातुएँ वे कहलाती हैं जिनका विकास संस्कृत धातुओं से नहीं हुआ है बल्कि जिनका सम्बन्ध या तो संस्कृत रूपों से है या आधुनिक काल में मूल रूप में रचिन है । इनके तीन विभाग किये जा सकते हैं—

१. नाम धातु—जिनका निर्माण सहा रूपों से हुआ है, यथा (हि० बन < सं० जन्म) ।

२. सपुंसक धातु—जो कृता का विभक्ति है, जैसे हिन्दी चुक < सं० चुकृत < चुक ।

३. अनुवर्णन कृमक—उदाहरणार्थ हिन्दी पढ़ना, पढ़ना < सं० पठ्ना ।

इनमें से हिन्दी में योगिक धातुओं का कुल संख्या १०६ मानी है । कुछ और



पा—हिन्दी 'पा' < प्राकृत पाइ, ठाई < संस्कृत 'स्थित' रूप में प्राप्त है।

होना—हि० होता < प्रा० होन्तो, हान्तो < सं० भवत्।

हूँ—(बो० हूँ, भयो) / प्रा० भवि० < सं० भवति।

रहना—हिन्दी 'रहना' की व्युत्पत्ति सदिग्ध है। टनर ने इसका सम्बन्ध 'रहित' आदि शब्दों की भाँति रह धातु से माना है।

पढ़ाई, बगाली, गुजराती, राजस्थानी तथा पुरानी भवधी आदि में अन्त्य 'छ' ध्वनि से युक्त सहायक क्रिया की व्युत्पत्ति प्रा० भा० घ्रा० की बलिष्ठ धातु √घृच्छ से मानी जाती है। टनर इसका सम्बन्ध म० 'घ्रा' √धे से जोड़ते हैं।

बट्टे—पूर्वी हिन्दी की कुछ बोलियों में यह रूप मिलता है। इसका धातुमार्ग सं० √बृत् से जोड़ा जाता है। यथा—हि० बाट्टे < प्रा० बट्टइ < म० बट्टे।

हिन्दी शब्दांशों के काल—प्रमुख रूप से कालों की संख्या प्रायः तीन ही। बानी है—वर्तमान, भूत और भविष्यत्। परन्तु निश्चयायं, आश्रयं, पानाई तथा व्यापार की सामान्यता और सम्पूर्णता आदि की दृष्टि से हिन्दी भाषा की संख्या सोलह तक मानी गई है। ऐतिहासिक रूप से हिन्दी शब्दांशों का तीन बगों में विभाजन किया जा सकता है।

(क) साहित्य कालों के आद्योद्योग काल—इस बग में वर्तमान सभ्यतायुग में आद्योद्योग की गणना की जाती है। आश्रयं निश्चयन के मध्य में हिन्दी उद्भव आश्रयनाई ध्वनि का सम्बन्ध साहित्य के वर्तमान काल के कर्तव्य धातु से माना जाता है। उदाहरणार्थ—संस्कृत 'वर्तमान' > प्राकृत 'वर्तमान' > अपभ्रंश 'वर्तमान' और हिन्दी धातु का विकास हुआ है। हिन्दी के प्रथम पुरुष के कर्तव्य की अभ्युत्पत्ति साहित्य के कर्तव्य से मानी जाती है। सं० प्रथम पुरुष के कर्तव्य का तत्कालीन अवस्था में वर्तमान है, यथा, 'उठो' बोलो और उठो है हिन्दी। इसी प्रकार अपभ्रंश पुरुष के कर्तव्य की उत्पत्ति संस्कृत के कर्तव्य से है। वर्तमान के अभ्युत्पत्ति उत्तम पुरुष के कर्तव्य और प्रथम पुरुष के कर्तव्य से होती है। उदाहरणार्थ—वर्तमान 'वर्तमान' और 'वर्तमान'।









भविष्यत् काल में भी इस—'ब' धन्त वाले रूप का प्रयोग पाया जाता है।  
 क) कर्तृवाचक सज्ञाएँ प्रियायंक सज्ञा के विकृत रूप में वाला, हारा आदि  
 उद्भूत लगाकर बनाई जाती हैं। जैसे जाने वाला, पकड़ने वाला आदि। हिन्दी  
 वाला का सम्बन्ध सं० 'पालक' तथा 'हारा' का सम्बन्ध सं० 'धारक' से जोड़ते  
 हैं। कुछ बोलियों में 'प्रदया' लगाकर भी कर्तृवाचक सज्ञा की रचना की  
 जाती है, यथा पढ़ैया, करैया आदि। इसका उद्भव भी संस्कृत 'तृक' से है।  
 जैसे, पढ़ैया < पठतृकः।

५. तात्कालिक कृदन्त—तात्कालिक कृदन्तों का निर्माण वर्तमानकालिक  
 कृदन्तों में 'ही' लगाकर किया जाता है। प्रायः वर्तमानकालिक कृदन्त के  
 विकृत में ही प्रयुक्त किया जाता है, यथा—जाते ही, नहाते ही आदि। अपूर्ण  
 क्रिया चोटक कृदन्त वर्तमान कालिक कृदन्त का ही एक परिवर्तित रूप है।  
 जैसे—उसे पुस्तक पढ़ते नींद आ गई। भूतकालिक कृदन्त के विकृत रूप से  
 पूर्ण क्रिया चोटक कृदन्त का जन्म हुआ है। उदाहरणार्थ—'उमे गये बहुत दिन  
 हो गये।'

धार्मुनिक काल में हिन्दी कृदन्तों का प्रयोग काल के भ्रम में होने लगा है।  
 संस्कृत कृदन्तों से ही हिन्दी कृदन्तों की उत्पत्ति हुई है परन्तु काल रूप में  
 प्रयुक्त हिन्दी कृदन्तों का सम्बन्ध सीधा संस्कृत कालों से नहीं है। मूल कालों की  
 कमी हो जाने से प्राकृत में भी इसी प्रकार कृदन्तों का प्रयोग पाया जाता है।  
 धार्मुनिक काल में जब प्राचीन कालों के सयोगात्मक रूप लुप्त हो गये तो  
 वे से







ठानीस, बत्तीस आदि ।

पचास—हिन्दी का पचास प्राकृत में पचासा और संस्कृत में 'पचासत्' रूप मिलता है । संयुक्त संस्थाओं में पचास का स्थानापन्न रूप 'पन', 'पन' तथा 'जन' है । जैसे बावन, तिरपन और चौपन आदि । उनच्चास, पचास के आधार पर बना है ।

षाठ—हिन्दी की इस संख्या के रूप प्राकृत में 'सट्ठि' तथा संस्कृत में 'षट्ठि' मिलते हैं । संयुक्त संस्थाओं में इसका रूपान्तर 'सठ' है, यथा—इकसठ, बासठ, तरेसठ आदि ।

सत्तर—हिन्दी के सत्तर का प्राकृत में 'सत्तरि' तथा संस्कृत में 'सप्तति' रूप प्राप्त होता है । पालि तथा प्राकृत में 'त' ध्वनि 'र' में परिवर्तित हो गई है । हिन्दी के सत्तर पर इन्हीं प्राकृत रूपों का प्रभाव है । चंडर्जी महोदय के मत में 'सप्तति' में ति<टि—डि<रि ध्वनि विकसित हो गयी है । परन्तु यह अभी सर्वमान्य नहीं है । संयुक्त संस्थाओं में 'सत्तर' की 'स' ध्वनि 'ह' में बदल गई है, जैसे उनहत्तर, इकहत्तर, बहत्तर आदि । सत्तर में 'ह' का लोप घटन में 'ह' महाप्राण 'ठ' में मिल गया है ।

अस्सी—हिन्दी अस्सी का विकास प्राकृत 'असीइ' संस्कृत 'असीति' से हुआ है । संयुक्त संस्थाओं में आसी अथवा यासी रूप मिलता है, यथा—उनासी, ब्यासी आदि । अस्सी में 'स' का द्वित्व रूप पञ्चाबी के प्रभाव से है ।

नब्बे—यह रूप प्राकृत के 'नव्वए' तथा संस्कृत के 'नवित' का रूपान्तर है । संयुक्त संस्थाओं में प्राकृत समकथ 'नब्बे' रूप मिलता है, जैसे बानबे, तिरा-तबे आदि ।

सौ—हिन्दी का सौ प्राकृत में 'सध' तथा 'सप' और संस्कृत में 'सत' है । इसका रूपान्तर संयुक्त संस्थाओं में 'सै' हो जाता है, यथा, सैकड़ा, सौ बार सै एक ।

हजार—हिन्दी में यह पञ्चाबी का तत्सम शब्द है । संस्कृत संयुक्त संस्थाओं में सहस्र का स्थान पर 'दसहस्र' का प्रयोग प्रचलित हो गया था । हिन्दी में 'हजार' का प्रयोग मुस्लिम-काल की दृष्टि से है ।

लाख—संस्कृत में इसका रूप 'लघ' है तथा स्थानीय में 'लख' यह बना है,

















**घाज**—इसका विकास हिन्दी संस्कृत शब्द 'घञ' से हुआ है। घाज में 'घञ' के 'य' की तालव्य ध्वनि (ज) दोष रही है और स्पर्श तथा अन्तस्थ वर्णों के योग में दोनों लुप्त हो गये हैं। लुप्त 'द' का तृतीय स्थान तालव्य ध्वनि 'ज' में सुरक्षित है और आदि स्वर दीर्घ हो गया है।

**इतवार**—संस्कृत आदित्यवार से इतवार की उत्पत्ति स्पष्ट है। आदि स्वर 'धा' तथा मध्य व्यंजन 'द' का लोप होकर इतवार दोष रह गया है। ध्वनि-विकास लोपीकरण का सिद्धांत लागू हुआ है।

**उन्नीस**—यह संस्कृत एकोनविंशति > उनविंशति का ही रूपान्तर है। ध्वनि-परिवर्तन के अन्तर्गत अन्तिम वर्ण 'ति' लुप्त होकर 'य' ध्वनि 'ई' में परिवर्तित हो गई। 'य' का 'स' बन गया। अतः उन्नीस बना।

**करोड़**—कोटि संस्कृत शब्द से यह निम्न है परन्तु ध्वनि-नियमों के लागू न होने के कारण इसकी उत्पत्ति सदिग्ध है।

**काज**—काज संस्कृत 'कायं' का विक्रमिit रूप है। कायं की मध्य ध्वनि 'र' का लोप हो गया तथा 'य' तालव्य ध्वनि 'ज' में बदल गई और काज बन गया।

रूपान्तर है। मध्य व्यंजन 'र' का लोप हो  
मे परिवर्तित हो गई और केवट का अन्व-

रदं

व्यंजन 'य' का दोष रूप 'व'  
'के मयोग से हुआ है। 'ट'  
में 'र' लुप्त और 'ड'  
दृष्टि से भी 'द' और 'ड'  
हो गया है। अन्त्य स्वर 'म'

है। 'य' के लोप हो जाने

'...य' से माना जाता है।

हुआ। ऊपर व्यंजन 'य' का



**घाज**—इसका विकास हिन्दी सस्कृत शब्द 'घय' से हुआ है। घाज में 'घय' के 'य' की तालव्य ध्वनि (ज) शेष रही है और स्पर्श तथा अन्तस्थ वर्णों के योग में दोनों लुप्त हो गये हैं। लुप्त 'द' का तृतीय स्थान तालव्य ध्वनि 'ज' में सुरक्षित है और घादि स्वर दोष हो गया है।

**इतवार**—संस्कृत घादित्यवार से इतवार की उत्पत्ति स्पष्ट है। घादि स्वर 'घा' तथा मध्य व्यजन 'द' का लोप होकर इतवार शेष रह गया है। ध्वनि-विकास लोपोकरण का सिद्धांत लागू हुआ है।

**उन्नीस**—यह सस्कृत एकोनविंशति > उनविंशति का ही रूपान्तर है। ध्वनि-परिवर्तन के अन्तर्गत अन्तिम वर्ण 'ति' लुप्त होकर 'व' ध्वनि 'ई' में परिवर्तित हो गई। 'घ' का 'स' बन गया। अतः उन्नीस बना।

**करोड़**—कोटि सस्कृत शब्द से यह निरुत्पत्ति है परन्तु ध्वनि-नियमों के लागू न होने के कारण इसकी व्युत्पत्ति सिद्ध है।

**काज**—काज सस्कृत 'कार्य' का विकसित रूप है। कार्य की मध्य ध्वनि 'र' का लोप हो गया तथा 'य' तालव्य ध्वनि 'ज' में बदल गई और काज बन गया।

रूपान्तर है। मध्य व्यजन 'र' का लोप हो मे परिवर्तित हो गई और कंठ स्वर घव-

रदं

व्यजन 'व' का शेष रूप 'व' के संयोग से हुआ है। 'ड' से 'र' लुप्त और 'ड' दृष्टि से भी 'द' और 'ड' हो गया है। अन्त्य स्वर 'य'

है। 'य' के लोप हो जाने

'य' से माना जाता है। हुआ। अन्य व्यजन 'य' का





**घ्राज**—इसका विकार हिन्दी संस्कृत शब्द 'अघ' से हुआ है। घ्राज में 'अघ' के 'य' की तालव्य ध्वनि (ज) दोष रही है शीघ्र स्पर्श तथा अन्तर्गम्य वर्णों के योग में दोनों लुप्त हो गये हैं। लुप्त 'द' का तृतीय स्थान तालव्य ध्वनि 'ज' में सुरक्षित है और घ्रादि स्वर दीर्घ हो गया है।

**इतवार**—संस्कृत घ्रादिस्ववार से इतवार की उत्पत्ति स्पष्ट है। घ्रादि स्वर 'घ्रा' तथा मध्य व्यंजन 'द' का लोप होकर इतवार दोष रह गया है। ध्वनि-विकास लोपोक्ति का सिद्धांत लागू हुआ है।

**उन्नीस**—यह संस्कृत एकोनविंशति > उनविंशति का ही रूपान्तर है। ध्वनि-परिवर्तन के अन्तर्गत अन्तिम वर्ण 'ति' लुप्त होकर 'व' ध्वनि 'ई' में परिवर्तित हो गई। 'घ' का 'न' बन गया। अतः उन्नीस बना।

**करोड़**—कोटि संस्कृत शब्द से यह निःसृत है परन्तु ध्वनि-नियमों के लागू न होने के कारण इसकी व्युत्पत्ति सिद्ध है।

**बाज**—बाज संस्कृत 'कायं' का विकृति रूप है। कायं की मध्य ध्वनि 'र' का लोप हो गया तथा 'य' तालव्य ध्वनि 'ज' में बदल गई और बाज



**घाज**—इसका विकास हिन्दी संस्कृत शब्द 'घघ' से हुआ है। घाज में 'घघ' के 'य' की तालव्य ध्वनि (ज) दोष रही है और स्पर्श तथा अन्तस्थ वर्णों के योग में दोनों लुप्त हो गये हैं। सुप्त 'द' का तृतीय स्थान तालव्य ध्वनि 'ज' में सुरक्षित है और घादि स्वर दीर्घ हो गया है।

**इतवार**—संस्कृत घादित्ववार से इतवार की उत्पत्ति स्पष्ट है। घादि स्वर 'घा' तथा मध्य व्यंजन 'द' का लोप होकर इतवार दोष रह गया है। ध्वनि-विकास लोपीकरण का सिद्धान्त लागू हुआ है।

**उन्नीस**—यह संस्कृत एकोनविंशति > उनविंशति का ही रूपान्तर है। ध्वनि-परिवर्तन के अन्तर्गत अन्तिम वर्ण 'ति' लुप्त होकर 'व' ध्वनि 'ई' में परिवर्तित हो गई। 'घ' का 'स' बन गया। अतः उन्नीस बना।

**करोड़**—कोटि संस्कृत शब्द से यह निम्न है परन्तु ध्वनि-नियमों के लागू न होने के कारण इसकी व्युत्पत्ति सदिग्ध है।

**काज**—वाङ्मय 'कार्य' का विकसित रूप है। कार्य की मध्य ध्वनि 'र' का लोप हुआ 'य' तालव्य ध्वनि 'ज' में बदल गई और काज



नेवना—इस शब्द की व्युत्पत्ति सम्भूत 'नकुन' से है। 'उ' धातु के 'न' से परिवर्तित हो गया। 'न' के 'म' का 'ए' तथा 'न' के 'म' का दीर्घ हो गया। इस प्रकार नेवना शब्द बना।

पचपन—इसका सम्भूत रूप पचापन है, पर पचापन से 'पचपन' बनना शदिध है। प्रतीत होता है 'पन' की व्युत्पत्ति प्राकृत रूप 'पगाना' से है। पच पगाना से पच के अनुसारा का योग होकर 'पच और अन्तिम अक्षर 'न' का योग हुआ गया। 'पना' से 'पन' होकर रहा। और रूप पचपन बन गया।

पचहर—यह सम्भूत 'पच गणति' या गणान्त है। उत्पत्ति में 'न' का विपर्यायार्थ 'ह' हो गया। पर 'ति' का 'र' होना सम्भव नहीं। इसका रूप 'सगरि' मिलता है। अन्तिम सहायक से इसकी व्युत्पत्ति निम्न प्रकार से होती है जो प्रायः शदिध है।













साधारणतया प्रत्येक वैदिक शब्द में गीतात्मक स्वराघात पाया जाता है। चीनी भाषा प्रायः भी संगीतात्मक है। वैदिक भाषा में बलात्मक स्वराघात का अस्तित्व था; लेकिन यह प्रमुख न होने के कारण चिह्नित नहीं किया जाता था। प्राकृतों में महाराष्ट्रीय, मागधी (मगध) जैन, काव्यात्मक अपभ्रंश तथा जैन गोरखेनी में यह स्वराघात वर्तमान था।

२. बलात्मक स्वराघात—बलात्मक स्वराघात का सम्बन्ध फेफड़ों से है। इसमें संगीतात्मक स्वराघात की भाँति ध्वनि ऊँची-नीची नहीं की जाती है अपितु साँस को धक्के के साथ छोड़कर जोर दिया जाता है। फेफड़ा तेजी से वायु फेंकता है। इस प्रकार शब्द के जिस अक्षर पर बलात्मक स्वराघात होता है उसकी आवाज कुछ जोर में मुताई पड़ती है। लैटिन और अवेस्ता में बलात्मक स्वराघात अधिक था। आधुनिक भाषाओं में अंग्रेजी और फारसी में भी यह पाया जाता है। इससे शब्द के अर्थ में भी प्रायः परिवर्तन हो जाता है। जैसे Conduct (कॉन्डक्ट) शब्द में स्वराघात (c) पर है तो शब्द सजा और यदि (d) पर है तो त्रिया हो जायेगा। यह बलात्मक स्वराघात शब्दात् के पूर्व प्रथम दीर्घ स्वर पर प्रायः रहता है। संस्कृत श्लोकों के उच्चारण में प्रायः इस प्रकार का स्वराघात प्रचलित है। गोरखेनी, मागधी तथा प्राकृतों में संस्कृत के बलात्मक स्वराघात का विकसित रूप वर्तमान कहा जाता है। प्रो० टैन्जर के अनुसार आधुनिक भारतीय धार्मिक-भाषाओं में संगीतात्मक तथा बलात्मक दोनों ही स्वराघातों का अस्तित्व है। इस विषय में अनेक विद्वानों में मतभेद भी है। परन्तु यह निश्चित है कि वैदिक काल के पश्चात् लिखित रूप में स्वराघात चिह्नित करने का रिवाज उठ गया था अतः अधिकांश सामग्री अनुमान पर ही आधारित है।

३. क्वात्मक स्वराघात—यह स्वराघात गीतात्मक तथा बलात्मक स्वराघातों से भिन्न है। प्रत्येक मनुष्य की स्वरतन्त्रियाँ शारीरिक बनावट के अनुसार भिन्न-भिन्न होती हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति के स्वर तथा गहरे में भिन्नता होती है। इसी गहरे या बोलने के विशेष दम से हम एक व्यक्ति की आवाज की हथारों में पहचान सकते हैं। यह स्वराघात बोलने में ही प्रयुक्त होता है। इस का यह अन्तर कायमोग्राफ के चित्रों में देखा जा सकता है।



उभयुक्त पाद में रे, रे, 'के' ये तीनों दीर्घ हैं परन्तु छंद की दृष्टि से ह्रस्व हैं। इस कारण जिन वर्णों पर स्वराघात नहीं है वे धाहे मात्रा की दृष्टि से ह्रस्व हों या दीर्घ स्वराघात के अभाव में ह्रस्व ही माने जाते हैं। कवित्त और पनाधरी में भी इसी नियम का प्रायः पालन किया जाता है।

अवधी में भी बलात्मक स्वराघात की स्थिति प्रायः है। वाक्य में व्यवहृत एकाधरी शब्दों में स्वराघात पाया जाता है। द्व्यधर, त्र्यधर तथा अधिक अक्षर वाले शब्दों में अन्त के दो अक्षरों में से उम पर न्यगघात होता है जो दीर्घ हो या स्थान के कारण दीर्घ माना जाय। यदि दोनों अक्षर दीर्घ या ह्रस्व हों तो स्वराघात उपान्त्य अक्षर पर होता है, जैसे पिसान, पचोस, भापद आदि।

इस प्रकार स्वराघात का हिन्दी में विकास वैदिक काल से पची हुई एक सम्यो परम्परा की श्रृंखला मात्र है।

प्रदन् हिन्दी भाषा की वैज्ञानिक परिभाषा दीजिए तथा उसके साहित्यिक रूप पर दृष्टि डालते हुए खड़ी बोली की उत्पत्ति और विकास पर एक सप्प लेख लिखिए।

रूप की दृष्टि से हिन्दी शब्द पारसी भाषा का है जिसका अर्थ हिन्द देश का वासी या हिन्द देश की भाषा दोनों अर्थों में हो प्रयुक्त होता था। शब्दार्थ की दृष्टि से हिन्दी शब्द का प्रयोग हिन्द या भारत में बाली जाने वाली किसी प्रायः व्यवसाय अथवा अनायः भाषा के लिए हो सकता है किन्तु व्यावहारिक रूप से हिन्दी उस बड़े भूभाग की भाषा मानी जाती है, जिसकी सीमाएँ पश्चिम में जैमलपुर, उत्तर-पश्चिम में अम्बाला, उत्तर में जिमला से लेकर नेपाल पूर्वी छोर तक के पर्वतीय प्रदेश का दक्षिणी भाग, पूर्व में भावलपुर, दक्षिण में रायपुर तथा दक्षिण-पश्चिम में छप्पड़ा तक फैली हुई है। भाषा-विज्ञान के अनुसार इस हिन्दी प्रदेश की तीन-चार उपभाषाएँ मानी जा सकती हैं—प्रायद्वानी, बिहारी, पहाड़ी तथा पूर्वी हिन्दी। मूल रूप से हिन्दी प्राचीन रूप में मध्यप्रदेश अथवा अजमेर की भाषा कहलाती है। यह प्राचीन भाषा हिन्दी का बन्धु भाषा और जो उत्तर में हिन्दी-बन्धु भाषा है, वह हिन्दी का बन्धु भाषा और दक्षिण में बन्धु भाषा की जाती है।



खड़ी बोली का प्रारम्भ—प्रारम्भ में खड़ी बोली के सम्बन्ध में एक भ्रम था रहा है कि इसका प्रादुर्भाव अंग्रेजों के भारत आगमन पर हुआ। इतिहास से ज्ञात होता है कि यह भाषा अंग्रेजों से पूर्व की है। यह भाषा अवधी और ब्रज के समकालीन की है। इसका उद्भव उस अपभ्रंश से हुआ जो हरियाने से बुलन्दशहर तक और मेरठ, मुजफ्फरनगर जिले तक बोली जाती थी। ११वीं शताब्दी में हेमचन्द्र के दान्दानुशासन नामक व्याकरण में इसके किञ्चित् रूप का आभास मिलता है।

उदाहरणार्थ—‘भत्ता हुआ जो मारिया, बहिणि म्हारा कन्तु’ में खड़ी बोली की आकारान्त प्रवृत्ति म्हारा, मारिया आदि में दृष्टिगत होती है। १५वीं शती के बीसलदेव रामो में चित्त भाट्या, मन उचट्या, मोती का आशा किया आदि वाक्य मिलते हैं।

इसके अनन्तर अमीर खुसरो का महत्व खड़ी बोली के कारण है। उनकी पहली और मुखरियों में तत्कालीन दृष्टि से खड़ी बोली का अधिक विकसित रूप दिखाई देता है। जैसे—‘लाखो का सर बाट दिया, ना मारा ना खून दिया। कबीर की कविता में यदा-वदा खड़ी बोली का प्रभाव सञ्चित होता है। जैसे “उठा बकुला प्रेम का तिनका चढ़ा आकाश।” में ‘तिनका’ ‘का’ आदि शब्द खड़ी बोली के चोकर हैं।

हिन्दी और उर्दू का सम्बन्धित रूप—हिन्दी और उर्दू की निम्नता का भान खड़ी बोली की कुछ विशिष्ट व्यवस्था में होने लगा था। गणभट्ट की ‘अनघ उड बणन की महिमा’ नामक कृति में खड़ी बोली का परिभाषित नहीं था। महत्त्वपूर्ण रूप व्यवस्था मिलता है। तत्पश्चात्, घाम, घास, लमाव आदि शब्दों में एक तरह उर्दू के प्रभाव का सर्वत्र मिलता है। घर-घर-घरों के घरों का भी प्रयोग किया गया है। रामप्रसाद निरबली कृत ‘बोधशक्ति’ में उर्दू शब्दों का प्रभाव में मुख्य खड़ी बोली शब्द का रूप मिलता है। १८८४ में दीननाथ राविकाश्याने कृत ‘श्रीन पञ्चपुराण’ का भाषानुवाद किया। भाषा में परिष्कार है। विद्यापद और बिराय चिन्ता का कुछ प्रयोग नहीं किया गया। अरमब की ‘दोरा शरद की बदा’ तथा अज्ञात लेखक कृत ‘मल्लिकार्जुन’ में खड़ी बोली शब्द का विशिष्ट रूप मिलता है। १८९८ में उर्दू





पंजाब में इस शान्ति के फलस्वरूप हिन्दी का प्रचार सीधे-सीधे से हुआ। बाबू नवीन चन्द्र राय तथा राजा राममोहनराय ने ब्रह्म धर्म के प्रचारार्थ अनेक पुस्तकों का सज्जन किया। हिन्दी प्रचार में श्यामसुन्दर कलौरी का योग महत्वपूर्ण है। उन्होंने कई पुस्तकें तथा 'भाग्यवती' नाम का उपन्यास लिखा। इनका गद्य सुलभ हुआ तथा प्रौढ़ था। बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में राष्ट्रीय चेतना का प्रभाव साहित्य के क्षेत्र में भी पड़ा। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा जय-धर प्रसाद के काल में अनेक कवि और लेखकों ने हिन्दी खड़ी बोली को समुन्नत तथा समृद्धिप्राप्ति बना लिया था। हिन्दी खड़ी बोली का क्षेत्र भागे जाकर इतना विस्तृत और प्रवाह हुआ कि उसमें कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, पत्र, जीवनियाँ आदि सभी समाहित हो गई। आधुनिक हिन्दी साहित्य भाषा का भाषा का प्रतिनिधित्व करता है।

प्रश्न ४२—दक्षिणी भाषा के विकास और साहित्य का परिचय देते हुए खड़ी बोली से उसका सम्बन्ध बताइए।

चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी में खड़ी बोली साहित्यिक हिन्दी के विकास में दक्षिण भारत के लेखकों, रियासत के नवाबों और उनके दरबारी कवियों, फकीरों आदि ने महत्वपूर्ण योग दिया है। इस कार्य में मुसलमानों का हाथ अधिक रहने और रचनाओं की लिपि फारसी होने के कारण इसे प्रायः उर्दू समझने की भूल होती चली आई है। दक्षिण में दक्षिणी हिन्दी आधुनिक खड़ी बोली के प्रादुर्भाव का विवक्षित रूप है। प्रसिद्ध भाषा-शास्त्री डा० बाबूराम नरसिम्हना ने गम्भीर अध्ययन एवं विवेचन द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि खड़ी बोली के विकास और समृद्धि में दक्षिणी रियासतों ने अत्यन्त महत्वपूर्ण योग देकर उसे मुख्य सामान्य नाज़ीन राष्ट्रभाषा का रूप देने में सहायता की थी। खड़ी बोली के हिन्दी के प्राचीनकाल में तीन नाम प्रचलित—हिन्दवी, हिन्दी और दक्षिणी। हिन्दी शब्द हिन्दवी शब्द का अर्थ है—हिन्दी भाषा। महाकवि कबीर हिन्दी से यह भाषा कई नामों में भिन्न है। यह उत्तरीय जनजातों की भाषा थी। हिन्दवी शब्द बहुत से अर्थों में प्रयुक्त, मुत्ता दहरी आदि प्रसिद्ध दक्षिणी विद्वानों ने इस भाषा स्पष्ट हिन्दवी शब्द का व्यवहार किया है। अन्य निजामी, रंगमो आदि



फारसी आदि के साहित्य के साथ भारत की विभिन्न भाषाओं के साहित्य का भी अध्ययन प्रबन्ध किया होगा। १७वीं शताब्दी तक के दक्खिनी भाषा के ग्रन्थों के लेखक सभी मुसलमान हुए। इसका कारण था कि हिन्दी के आदिकाल के विद्वानों की भाषा संस्कृत थी। साहित्य की भाषा अपभ्रंश थी। उस समय हिन्दू अपनी प्रचलित साहित्यिक भाषाओं—संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश में साहित्य रच रहे थे। मुसलमान विदेशियों ने साधारण जनता की बोलचाल की भाषा को ग्रहण कर साहित्य में उसका प्रयोग किया। भारतीय जनता के साथ संपर्क स्थापित करने के लिए इमीलिये उन्होंने इस प्रदेश की भाषा और-सेनी अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी खड़ी बोली का सहारा लिया। मुस्लिम सत्ता और फकीर अपने धर्म का प्रचार तथा प्रसार करने के लिये इस भाषा का व्यवहार करने लगे। इस प्रकार प्रथमः मुस्लिम संस्कृति और राज्य-विस्तार के साथ साथ हिन्दी की भी व्यापकता बढ़ती गई।

उत्तर भारत में इस हिन्दी के सर्वप्रथम कवि प्रमीर खुसरो माने जाते हैं। इनकी हिन्दी बोल-चाल की भाषा थी, जिसमें खड़ी बोली के साथ कुछ ब्रज भाषा का घुट भी था। खुसरो के समकालीन सत भलीकलदर का दोहा भाषा की दृष्टि से पठनीय है—

सजन सकारे जायेंगे और नैन मरेंगे रोय ।

किधना ऐसी रैन कर भोर कभी न होय ॥

इस प्रकार भारत में खड़ी बोली में वाच्य-निर्माण १५वीं शती तक का प्राचीन उपलब्ध होता है। उसके उपरान्त यह परम्परा कई शतियों तक सुध रही। 'उस समय भारतीय परम्परा में उच्च श्रेणी का संस्कृत साहित्य रचा जा रहा था तथा प्राकृत और अपभ्रंश में वाच्य, नाटक, कहानी आदि रचा रहे थे तथा विदेशी परम्परा बढ़िया मार्कों की बीजों पारसी में लिखने पर जन-साधारण के समझने योग्य सिद्धांत और बिरसे-बहानियाँ हिन्दी लिख देने थे।' यह विदेशी परम्परा खड़ी बोली को साथ लेकर १८वीं से दशमिणी प्रदेशों में मुख्यमानी पौरो, सती और दबैलों के साथ दशमिणी भारत का पारस से सीधा संपर्क बर्भा नही रहा। उन्हा उत्तरी भारत के मुस्लिम शासकों से था। इसी से हिन्दी यहाँ मूढ़ प।




हफोज़ दक्खिन चले गये। परन्तु इन नवीन कलाकार की कृतियों में 'दक्खिनी' की विशेषताएँ लुप्त होने लगी। इन पर फारसी का गहरा रंग चढ़ गया था।

अब तक दक्खिनी के सभी कलाकार मुसलमान हुए परन्तु आसफ़ज़ाही राज्य में कुछ हिन्दुओं ने भी इस भाषा में रचनाएँ की, जिनमें ताला मोहन-लाल 'मेहज़ाब' और ताला लछ्मीनारायण 'शरीफ़' उल्लेखनीय हैं। बीसवीं शताब्दी तक आने-आते तो हैदराबाद ही इस भाषा का एकमात्र पोषक रह गया। परन्तु इस समय तक भाषा अपना स्वाभाविक स्वरूप खोकर उर्दू का रूप धारण कर चुकी थी। अब यहाँ के सभी साहित्यकारों की भाषा खालिस उर्दू है। फिर भी दो-एक कवियों ने दक्खिनी को अपनाया है इसमें 'हलम' की टुमरियाँ और अशमत के हिन्दी छंद अच्छे बन पड़े हैं। संक्षेप में आधुनिक सरो बोर्ल की पूर्वज हिन्दी, हिन्दवी या दक्खिनी भाषा के उद्गम और विकास की यही कहानी है।

साहित्य की दृष्टि से दक्खिनी गद्य में मसनवियाँ अधिक हैं। निजामी की मसनवी 'बदमराव व पदम' दक्खिनी की प्रथम मसनवी है। वजही की कुतुब मुस्तरी मौलिक रचना है। जायसी के पद्यावत की कथा पर आधारित गुलाम भली वृत्त दक्खिनी की मसनवी 'पद्यावत' है। मुक़ीमी की मसनवी 'चन्द्र वदन' है। इन मसनवियों के अनिरिक्त ग्रहमद लुनेंसी की माहू पेकर, सेवक की जग-नामा और मुल्तान इब्राहीम की नवरस उल्लेखनीय हैं।

अतः यह सारा साहित्य हिन्दी या आदि साहित्य कहा जा सकता है पर इसकी निधि फारसी है। हिन्दी वालों को दुर्बोध है। यद्यपि हिन्दी की दक्खिनी शाखा के सेवक प्रायः मुसलमान थे फिर भी उनमें भारतीयता और देशीयन पर्याप्त था।

 ११—देवनागरी के उद्गम और विकास पर एक लेख लिखिये त उसके गुण और दोषों का विवेचन करते हुये कुछ सुधारमक सुझाव कीजिये।

भाषा और निधि का पारस्परिक सम्बन्ध यथा परिच्छिन्न है। निधि न का आधार तथा शरीर है। भाषा और निधि दोनों ही विचार-विनम आध्म तथा भाव-प्रवादन के सबेद हैं। भाषा का बिना गद्य लिखित



है। देवनागरी लिपि की एक विशेषता यह है कि इसमें जो कुछ लिखा जाता है उसका उच्चारण पूर्ण रूपेण उसी प्रकार किया जाता है। विश्व की अन्य लिपियों में यह गुण नहीं है। रोमन तथा उर्दू लिपि में अनेक ध्वनि-सकेत नहीं हैं। साथ ही उसमें लिखा कुछ जाता है और उसका उच्चारण अन्य प्रकार से किया जाता है। एक ही वर्ण का प्रयोग विभिन्न शब्दों में करने से इसका उच्चारण भी बदल जाता है। परन्तु देवनागरी लिपि में ऐसा नहीं होता। वहाँ एक निश्चित ध्वनि के लिए सदैव एक निश्चित वर्ण का प्रयोग ही उचित माना गया है। इसी कारण इसको वैज्ञानिक लिपि माना गया है।

हिन्दी प्रदेश में अनेक लिपियों के होते हुए देवनागरी लिपि का स्थान सर्व-प्रथम उच्च है। मुद्रण में तो भद्रिकाग्रतः इसी का व्यवहार किया जाता है। इस लिपि में स्वर और व्यञ्जन के सैद्धान्तिक सकेत वर्तमान हैं। इतना ही नहीं उच्चारण भ्रमरव, आन्तर प्रयत्न और बाह्य प्रयत्नों के सिद्धान्तों पर जो वर्गीकरण किया गया है। इन्हीं के प्रतीक देवनागरी के स्वर और व्यञ्जन के वर्ण हैं। उदाहरणार्थ अ, आ, ओ, उ, इ आदि के उच्चारण में जिस प्रकार की मुष्णावृत्ति बनती है, उसी से मिलते-जुलते ये वर्ण बने हैं। 'अ' के उच्चारण में मुख आधा खुलता है और जिह्वा की स्थिति मध्य में होती है। 'आ' की मात्रा उसके पूरे खुलने की छोटक है। 'उ' में भी मुँह के बन्द होने का स्वरूप है। 'ओ' और 'ऐ' की दोहरी मात्राएँ (१, २) मुँह के जबड़ों के दोहरे चलने का छोटक है। एक अंग्रेज भाषा वैज्ञानिक ने हिन्दी वर्णमाला की वैज्ञानिकता की परीक्षा करने के उद्देश्य से उन वर्णों के स्वरूप के मिट्टी के खोदने रूप बनाये। उनमें उनके भीतर जब स्वर फूँका तो इनमें से उन्ही स्वरों की ध्वनि सुनाई दी। यह घटना इस लिपि की वैज्ञानिकता का सर्वप्रथम प्रमाण है।

हिन्दी वर्णमाला के स्वर तथा व्यञ्जनों में भ्रमर है। स्वरों के उच्चारण में स्थानों से बिना टकराये हुए स्थाय ध्वनि निकल जाती है जब कि व्यंजनों में प्राणवायु उच्चारण-स्थानों के स्पर्श या घर्षण करती हुई बली जाती है। सैद्धान्तिक दृष्टि से स्वर और व्यञ्जन पृथक् पृथक् होने चाहिये। देवनागरी में ऐसा ही है।

उच्चारण-स्थानों के अनुसार स्पर्श व्यञ्जनों के पाँच वर्ग कर दिये ग





बंगला । उत्तर भारत की अधिकांश आधुनिक लिपियाँ नागरी लिपि की मूलान हैं । इस कारण वर्तमान देवनागरी लिपि से इनका निकट का सम्बन्ध और सादृश्य है । ब्राह्मी की दक्षिणी शाखा के अन्तर्गत, पश्चिमी, मध्यप्रदेशीय, खेत्तू, कन्हडी, ग्रंथ लिपि, कर्नाट लिपि तथा तामिल लिपि का प्रादुर्भाव हुआ ।

छाठवीं शताब्दी से नागरी लिपि की प्रभुता बराबर रही है । राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश में दसवीं शती के समस्त शिलालेख आदि इसी लिपि में लिखे गए हैं । आधुनिक देवनागरी लिपि प्राचीन नागरी लिपि का ही विकसित रूप है । गत सौ वर्षों में मुद्रण के आविष्कार ने संयुक्त व्यंजनों के ऊपर नीचे से सम्मिलित रूपों (झ, ञ, ऋ, आदि) हटाकर प्राये पीछे लिखे हुए रूपों (ञ्च, ञ्क, ञव आदि) को ही अधिक प्रयुक्त किया है ।

आज नागरी लिपि का उत्तरोत्तर विकास हो रहा है । हिन्दी, संस्कृत तथा मराठी की यही एकमात्र लिपि है । नेपाल की यही राजलिपि है । मियान्मार और मे दमका सम्मान हो रहा है तथा भारत की लिपि भी यही मानी गई है ।

## परिशिष्ट

अन ४४—स्पष्ट कीजिये—

(क) भाषा की परिभाषा, (ख) भाषा अक्षित सम्प्रति है, (ग) भाषा व्यवस्था से ब्योगावस्था की ओर जाती है, (घ) भाषा-वचन, (ङ) भाषा सामान्य प्रवृत्तियाँ ।

(क) भाषा की परिभाषा—भाषा विचार की अभिव्यक्ति तथा विचार-प्रय का साधन है । दूसरे शब्दों में विचार की अभिव्यक्ति के लिए बर्णों सहित जो समाज के द्वारा स्वीकृत है और जिसका व्यवहार होता है; भाषा है ।' सामान्य रूप से विश्व साधन से हम अपने विचार का भाव । तक पहुँचा सकते, वह भाषा है ।"

डा० आनन्ददास त्रिपाठी व भाषा-विज्ञान में दो हुई परिभाषा —

"भाषा उच्चारणश्रवणों से उत्पन्न अभिव्यक्ति-व्यवस्था का दृष्टिक







## व्याकरण

भाषा-विज्ञान और व्याकरण का घनिष्ठ सम्बन्ध है। व्याकरण भाषा-विज्ञान के लिए सामग्री प्रस्तुत करता है और भाषा-विज्ञान व्याकरण को द्रष्टेय बनाता है। व्याकरण भाषा की माधुना तथा अमाधुना पर विचार करता है परन्तु भाषा-विज्ञान भाषा की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करता है और भाषा के मूल रूपों और कारणों की खोज करता है। व्याकरण प्रगतिवादी न होकर प्राचीनतावादी है और नवजात रूपों को अज्ञात मानता है जबकि भाषा-विज्ञान का सम्बन्ध भाषा के 'जीवित रूप' से है। व्याकरण नियम, उपनियम तथा अपवाद का सविस्तार विवेचन करता है तथा भाषा के निष्पन्न रूपों को अपनाना है और भाषा-विज्ञान प्रत्येक शब्द-रूपों की व्याख्या तथा इतिहास प्रस्तुत करता है। भाषा के प्राचीन रूप का विकास कैसे हुआ, भाषा-विज्ञान इस कारणों की खोज करता है। अतः भाषा-विज्ञान का क्षेत्र अधिक व्यापक तथा निश्चित है। व्याकरण 'क्या' का उत्तर देता है और भाषा-विज्ञान 'क्यों' और 'कैसे' का उत्तर देता है। अतः भाषा-विज्ञान व्याकरण का भी व्याकरण है।

## साहित्य

भाषा-विज्ञान भाषा के अध्ययन के लिए प्रायः समस्त सामग्री साहित्य ही ग्रहण करता है। भाषा और रूप-परिवर्तन का ज्ञान कराने वाली सामग्री हमें साहित्य में ही स्थित मिलती है। भाषा के ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक अध्ययन में हमें साहित्य से ही सहायता मिलती है। मङ्कृत, अवेस्ता तथा ग्रीष्म आदि प्राचीन साहित्य के आधार पर ही हम इन तीनों को एक परिवार मानते हैं। अतः भाषा की प्राचीन निधि साहित्य में सुरक्षित मिलती है। हिन्दी भाषा की मूल प्रकृति को जानने के लिए भाषा-विज्ञान अपभ्रंश, प्राकृत, नसि तथा बंदि साहित्य को ध्यान देता है और इसका श्रमबद्ध रूप साहित्य उत्पन्न होता है। मन्त्रार्थ परिवर्तन आदि कारण साहित्य तथा वाङ्मय आधार पर निश्चित किये जाते हैं।

## मनोविज्ञान

भाषा-विज्ञान और मनोविज्ञान में वर्णन सान्निध्य है। भाषा विचारिणी है तथा विचारों का स्रोत सम्बन्ध मन्त्रिक तथा मनोविज्ञान मनुष्य की इच्छा-शक्ति में भी भाषा का बहुत कुछ सम्बन्ध है। अतः भाषा-विज्ञान भाषा की घातृक गुणियों को मनुष्य में मनोविज्ञान से



प्रकाश डाला गया है।

### शरीर-विज्ञान

शरीर-विज्ञान और भाषा-विज्ञान का गहरा सम्बन्ध है। भाषा का मनुष्य के शारीरिक गठन से पर्याप्त सम्बन्ध है। भाषा मुख से निःसृत ध्वनि है, अतएव स्वन वायु की गति, स्वर-यंत्र, स्वरतथो, नासिक-विवर, तालु, दाँत, जीभ, ओष्ठ, कंठ, मूर्द्धा आदि अवयवों का कार्य तथा कान द्वारा ध्वनि का ग्रहण आदि ममस्त पद्धति का ज्ञान शरीर-विज्ञान के बिना सम्भव नहीं है। ज्ञानतन्त्रु भस्त्रिक से मुख, नासिका आदि अवयवों को प्रेरित करते हैं। लिखित भाषा का ग्रहण भी नेत्रेन्द्रिय में होता है जो शरीर-विज्ञान का एक अंग है।

### इतिहास

भाषा-विज्ञान और इतिहास का घनिष्ठ सम्बन्ध है। किसी देश में किसी अन्य देश का राज्य स्थापित होना दोनों ही देशों की भाषा को प्रभावित करता है। हिन्दी में फ़ारसी, फ़ारसी, तुर्की, पुर्तगाली तथा अंग्रेजी शब्दों का बाहुल्य राजनीतिक परतन्त्रता तथा राजनीतिक सम्बन्ध की ओर संकेत करता है।

भाषा का ऐतिहासिक या गुणनात्मक अध्ययन इतिहास के तमिग्याच्छत्र गृष्टों पर भी प्रकाश डालता है। भाषा-विज्ञान की सहायता से तत्कालीन भाषा के आधार पर प्रागैतिहास काल के समाज का अध्ययन किया जाता है। भारोपीय परिवार के अध्ययन में मूल भारोपीय लोगों की सामाजिक दशा तथा धार्मिक प्रवृत्तियों का परिचय प्राप्त हो जाता है। उदाहरणार्थ प्राचीनतम धर्म दरिदार बनाकर रहने में तथा परिवार में अनेक सम्बन्धों का प्रमाण शब्दों के अस्तित्व से प्राप्त हो जाता है। धर्मों के मूल निवास-स्थान की खोज भी इसी आधार पर हो रही है।

### समाज-शास्त्र

भाषा विचार विनिमय का साधन है। समाज में होना मानवीय म का आदान-प्रदान भाषा के माध्यम से ही होता है। अनेक सांस्कृतिक को समाज ने खोजा है वही भाषा बन गई है। अतः भाषा का अध्ययन ही समाज का अध्ययन है। ईरान में 'दब' शब्द अशुभ माना जाता है जबकि भारत में पुत्र अर्धे में इसका प्रयोग होता है। अर्थात् अशुभ शब्दों का अर्थ ही है। अतः भाषा का अध्ययन ही समाज का अध्ययन है।

1. The first part of the document is a list of names and their corresponding addresses. The names are listed in a column on the left, and the addresses are listed in a column on the right. The names are: John Doe, Jane Smith, and Bob Johnson. The addresses are: 123 Main St, 456 Elm St, and 789 Oak St.



से इनके मन्त्रों के योग को प्रक्षिप्त कहा जाता है।

(३) प्रक्षिप्त योगात्मक—इसमें केवल प्रत्ययों का प्राधान्य रहता है और प्रत्ययों से ही सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। इन वाक्यों में मूल मन्त्र और सम्बन्ध-तत्त्व को प्रकट करने के लिए प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं। इसी कारण इन वाक्यों को 'प्रारम्भिक गठन वाले वाक्य' की सजा से विभूषित किया जाता है।

(४) श्लिष्ट योगात्मक—ये विभिन्न प्रधान वाक्य कहे जाते हैं। विभिन्नियों का प्रयोग प्रक्षिप्त योगात्मक की भाँति प्रत्यय रूप में होता है। पर दोनों में अन्तर यह है कि प्रक्षिप्त में प्रत्यय स्पष्ट रहते हैं और श्लिष्ट में इनका स्पष्ट पता नहीं चलता है। जैसे राम+मु (प्रथमा, एक व०)=रामः (यहाँ मु का पता नहीं चलता है। इसी प्रकार कहीं-कहीं तो सयोग में प्रत्यय पूर्णतया लुप्त हो जाता है, यथा लता+मु=लता (मु का सर्वथा लोप हो गया है। व्याकरणिक गठन की दृष्टि से वाक्य के तीन प्रकार हैं—(१) साधारण वाक्य, (२) संयुक्त और (३) मिश्रित वाक्य।

भाव या अर्थ की दृष्टि से वाक्य के भेद—

- (१) विधान सूचक—राम जाता है।
- (२) निषेध सूचक—राम नहीं जाता है।
- (३) आज्ञा सूचक—यह काम करो।
- (४) प्रश्न सूचक—तुम कहाँ रहते हो ?
- (५) विस्मय सूचक—अरे ! यह क्या हुआ।
- (६) वह गया होगा।

क्रिया के आधार पर—(क) क्रियायुक्त वाक्य, (ख) क्रिया विहीन वाक्य (मुहावरे, लोकोक्ति तथा विज्ञापन आदि में ऐसे वाक्यों का प्रयोग होता है।) वाक्य-गठन में परिवर्तन के कारण

(१) अन्य भाषा का प्रभाव—जब कोई भाषा अन्य भाषा से प्रभावित होती है तो कभी-कभी उसके वाक्य गठन में भी उस प्रभाव के फलस्वरूप परिवर्तन आ जाता है। हिन्दी में फारसी और अंग्रेजी के प्रभाव के कारण परिवर्तन आ गये हैं। 'कि' लगाकर वाक्य बनाने की परम्परा फारसी की है। नेहरू आदि की भाषा में अंग्रेजी के प्रभाव से विशा के बाद वरम प्रवृत्ति मिलती है।

(२) ध्वनि-विकास के कारण विन्ययों का पिस जाना—विकास के साथ जब सम्बन्ध तत्त्व को स्पष्ट करने वाली विन्ययों



यह अभिकाकल नीचे की ओर झुककर श्वास-नालिका को बन्द कर देता है और भोजन या पानी आगे सरक कर भोजन-नालिका में घुसा जाता है। श्वास-नालिका के ऊपरी भाग में अभिकाकल के नीचे ध्वनि उत्पन्न करने वाला प्रधान अवयव होता है जिसे ध्वनि-यन्त्र या स्वर-यन्त्र कहते हैं। बाहर गले में जो उमरी घांटी दिखाई देती है, यह वही है। स्वर-यन्त्र में पतली भिन्नी के बने दो लवचने पदों वा कपाट होने हैं उन्हें स्वर-लवचनी या स्वर-रज्जु कहते हैं। ध्वनियों उत्पन्न करने के लिए स्वरलवचनों एक दूसरे के समीप आती हैं और दूर हटती हैं। इस प्रकार अनेक प्रकार की स्थितियाँ उत्पन्न होकर अनेक विभिन्न ध्वनियों की उत्पत्ति होती है। इनमें घोंग, घघोष, क्षप्राण तथा महाप्राण ध्वनियों उच्चरित होती हैं। जँभ के स्वरण के साम वा छोटा सा भाग उस स्थान पर होता है जहाँ में नासिका-विवर और मुख-विवर के गन्ने फूटने हैं, इसे बौचा या अनिजिह्व कहते हैं। बौचा की मध्य स्थिति में अनुनासिक बर्णा तथा इसके नासिका-विवर का रोवने पर नाधारण बर्णा या उच्चारण होता है। मुख-विवर के ऊपर की छार नालु है जिसके कण्ठ स्थान और दोना २ अंश में प्रथम से चार भाग हैं—१ कामल नालु, २ मंडा ३ कटार नालु तथा ४ वंश। जिह्वा के विभिन्न भागों का इनमें स्पर्श कराकर विभिन्न ध्वनियों उत्पत्ति की जाती है। मुख-विवर के निचले भाग में जिह्वा है। वादन में वायु पत्र पर या विशेष छारुति या गूँज-विवर बनाने के लिए इसका प्रयोग करते हैं। जिह्वा के पाँच भाग हैं—मूल पदच मध्य, अग्र तथा नीच। जिह्वा दात या हाड में मिलकर विभिन्न ध्वनियों का निर्माण करते हैं। यह संज्ञात रूप में ध्वनि-यन्त्र का बाय है।

(ख) भाषण-ध्वनि और ध्वनिमात्र का अन्तर—भाषा ध्वनि संवेना का गमूह मात्र है। ध्वनि से ध्वनिमात्र भाषण ध्वनि और वष ध्वनि सामान्य तौरा का अर्थ लिया जाता है। वष का सामान्य अर्थ बलमात्रा से है। भाषण ध्वनियों द्वारा उत्पन्न निश्चित ध्वन्य गुण वाली ध्वनि भाषण ध्वनि है। ध्वनि में किसी भी गुण के कारण निश्चित भी विचार उत्पन्न होता है तो वह ध्वनि-ध्वनि एक अन्य प्रकार की होती है और दूसरी ही ध्वनि बनी रहती है। अतः भाषाओं में इस प्रकार का भाषण ध्वनि बहुत अधिक होती है पर उन सभी के लिए पृथक्-पृथक् विधि संकेत नहीं होते हैं बल्कि कई ध्वनियों सम्बद्ध भाषण में विद्वत् स्थान में ही प्रयुक्त होती है। भाषण ऐसी ध्वनिक भाषण-































है, यह उच्च हिन्दी कहानी है। यूरोपीय विद्वान् इसी को उच्च हिन्दी अथवा नागरी कहते हैं। प्रायः निम्न हिन्दू इसी भाषा का प्रयोग करते हैं। इसी हिन्दी में वर्तमान युग का साहित्य निर्मित हो रहा है और यहाँ राष्ट्रभाषा के गिहामन की भी शिथिलता कर रहा है।

रेन्ता—फारसी शब्दों के अधिक मिश्रण के कारण कविता में प्रयुक्त उर्दू को रेन्ता (मिश्रित) कहते हैं। इसका व्यवहार मुगलसाल के उत्तरार्द्ध में दिल्ली तथा मगध के दरबारी मुगलमानी कवियों ने किया। अतः मुगलमानों ने उर्दू के इस उन्नत और साहित्यिक रूप को रेन्ता नाम दिया। डॉ० श्याम-सुन्दरदाम ने 'रेन्ता' का अर्थ 'निगलना' या 'पहना' किया है। सम्भवतः मुगलमानों की इसी गिरा या खड़ी बोली के रेन्ता नाम का विशेष सूचित करने के लिए दिल्ली, मगध प्रान्त की भाषा का नाम 'खड़ी बोली' पड़ गया होगा।

सर विलियम जोस (१७४६-१७९६)—जोस साहब कलकत्ता हाईकोर्ट में चीफ जस्टिस थे। यहाँ आपने संस्कृत का अध्ययन कर यूरोपीय भाषाओं में एक साम्य मूल देखा। १७९६ में रायल एशियाटिक सोसायटी की स्थापना की और संस्कृत के महत्व की घोषणा की और इसे ग्रीक तथा लैटिन में भी श्रेष्ठ बताया। इन घोषणा के पश्चात् यूरोपीय विद्वानों का ध्यान संस्कृत की ओर आकर्षित हुआ।

योकोब ग्रिम (१७८५-१८६३)—इनका जन्म जर्मनी में एक वकील के घर हुआ था। प्राचीन जर्मन भाषा का इन्होंने अध्ययन किया तथा मगोनीय भाषाओं में इसकी तुलना की। ग्रिम की सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुस्तक उनका देवनागरी व्याकरण (Deutsche Grammatik) है। यह जर्मन भाषा का व्याकरण १८१९ में प्रकाशित हुआ। इसके दूसरे संस्करण में ध्वनि-प्रकरण में एक नवीनता थी तथा उसमें वर्ण-परिवर्तन का विवेचन किया गया है, जिसे बाद में ग्रिम-नियम कहा जाने लगा था। जीवन के अन्तिम चरण में ग्रिम बर्लिन में अध्यापक थे और अन्त तक भाषा-विज्ञान सम्बन्धी कार्य करते रहे थे।

फ्रान्स बाँप—इन्होंने पेरिस के आकर संस्कृत का अध्ययन किया। बाँप तुलनात्मक भाषा विज्ञान के पिता कहे जाते हैं। १९वीं सदी के दूसरे चरण में इनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'तुलनात्मक व्याकरण' प्रकाशित हुई। तुलनात्मक व्याकरण की प्रथम पुस्तक यही है। विद्वान् लेखक ने संस्कृत, जैद, अमीनियन, ग्रीक, लैटिन, लिथुआनियन, प्राचीन स्लावियन, गॉथी तथा जर्मन का तुलनात्मक व्याकरण दिया है। ये संस्कृत, ग्रीक, लैटिन का मूल स्रोत एक मानते



प्राकरण पर भी महत्वपूर्ण कार्य किया है। बंगला-व्रति पर भी इन्होंने विचार प्रकट किये हैं। मूल भागोपीय भाषा के सम्बन्ध में भी इनका योग्य उल्लेख है। इनकी 'भारतीय भाषा-भाषा और हिन्दी' भी एक हिन्दी भाषा के उत्तर प्रमुख ग्रन्थ है।

प्रमुख रूप में देखिये

दीर्घमयी—ग्रन्थ २६। प्राकृत की भाषा।

दानम् तथा कर्तुम् समुदाय—ग्रन्थ २७, विष्णु-ग्रन्थ।

इन्द्रियान्—इसी शीर्षक कहल है—ग्रन्थ २८, विष्णु-ग्रन्थ।

उत्तमीमता—ग्रन्थ २९।

उद्ग—ग्रन्थ ३०।

दक्षिणार्ण—ग्रन्थ ३१।

हिन्दी—ग्रन्थ ३२।

हिन्दवी—ग्रन्थ ३३।

हिन्दुस्तानी—ग्रन्थ ३४।

ब्रज—ग्रन्थ ३५।

घडधडी—ग्रन्थ ३६।

महाभाषा—ग्रन्थ ३७।

मासिक ५ पत्रिका का प्रकाशन है—

प्रथम ५०—हिन्दी के साहित्य-भाषा शास्त्र-भाषा साहित्यिक भाषा-भाषा के प्रत्यक्ष पर एक साहित्य सम्बन्धक हिन्दुस्तानी निबन्ध

संज्ञा विज्ञान के विषय में १-२० तक है। २१-३० तक है। ३१-४० तक है। ४१-५० तक है। ५१-६० तक है। ६१-७० तक है। ७१-८० तक है। ८१-९० तक है। ९१-१०० तक है। १०१-११० तक है। १११-१२० तक है। १२१-१३० तक है। १३१-१४० तक है। १४१-१५० तक है। १५१-१६० तक है। १६१-१७० तक है। १७१-१८० तक है। १८१-१९० तक है। १९१-२०० तक है। २०१-२१० तक है। २११-२२० तक है। २२१-२३० तक है। २३१-२४० तक है। २४१-२५० तक है। २५१-२६० तक है। २६१-२७० तक है। २७१-२८० तक है। २८१-२९० तक है। २९१-३०० तक है। ३०१-३१० तक है। ३११-३२० तक है। ३२१-३३० तक है। ३३१-३४० तक है। ३४१-३५० तक है। ३५१-३६० तक है। ३६१-३७० तक है। ३७१-३८० तक है। ३८१-३९० तक है। ३९१-४०० तक है। ४०१-४१० तक है। ४११-४२० तक है। ४२१-४३० तक है। ४३१-४४० तक है। ४४१-४५० तक है। ४५१-४६० तक है। ४६१-४७० तक है। ४७१-४८० तक है। ४८१-४९० तक है। ४९१-५०० तक है। ५०१-५१० तक है। ५११-५२० तक है। ५२१-५३० तक है। ५३१-५४० तक है। ५४१-५५० तक है। ५५१-५६० तक है। ५६१-५७० तक है। ५७१-५८० तक है। ५८१-५९० तक है। ५९१-६०० तक है। ६०१-६१० तक है। ६११-६२० तक है। ६२१-६३० तक है। ६३१-६४० तक है। ६४१-६५० तक है। ६५१-६६० तक है। ६६१-६७० तक है। ६७१-६८० तक है। ६८१-६९० तक है। ६९१-७०० तक है। ७०१-७१० तक है। ७११-७२० तक है। ७२१-७३० तक है। ७३१-७४० तक है। ७४१-७५० तक है। ७५१-७६० तक है। ७६१-७७० तक है। ७७१-७८० तक है। ७८१-७९० तक है। ७९१-८०० तक है। ८०१-८१० तक है। ८११-८२० तक है। ८२१-८३० तक है। ८३१-८४० तक है। ८४१-८५० तक है। ८५१-८६० तक है। ८६१-८७० तक है। ८७१-८८० तक है। ८८१-८९० तक है। ८९१-९०० तक है। ९०१-९१० तक है। ९११-९२० तक है। ९२१-९३० तक है। ९३१-९४० तक है। ९४१-९५० तक है। ९५१-९६० तक है। ९६१-९७० तक है। ९७१-९८० तक है। ९८१-९९० तक है। ९९१-१००० तक है।







जैसे अंग्रेजी शब्द "शॉपू" का मूल हिन्दी शब्द 'चापना' से है, पर अंग्रेजी माना जाता है। (c) दो भाषाओं के शब्दों में अर्थ और ध्वनि को दृष्टि से साम्य होने पर अनिश्चित दशा में एक परिवार और वर्ग के जानने पर उसकी व्युत्पत्ति के लिए आदि जननी मूल भाषा का समान शब्द में लेना चाहिए। जैसे स० पितृ, मा० फादर, हिन्दी पिता आदि।

**भाषा पर आधारित प्रागैतिहासिक खोज (Linguistic Palaeontology)**—  
भाषा विज्ञान की यह शाखा इतिहास, सभ्यता और सभ्यता की दृष्टि में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस खोज से इतिहास के उस अन्धयुग पर जिसके सम्बन्ध में कोई सामग्री प्राप्त नहीं, भाषा के सहारे प्रकाश डाला जाता है। इसमें किसी भाषा के प्राचीन शब्दों को लेकर उस कुल की अन्य भाषाओं के प्राचीन शब्दों की तुलना के आधार पर उन शब्दों का सम्यक् विवरण कर उनके सामाजिक धार्मिक तथा आर्थिक पक्षों पर विचार किया जाता है। जानवरों के नाम, माध साध ही प्रवृत्ति, पर्वत, नदी, पेड़-पौधे तथा ऋतु से सम्बन्धित शब्दों के आधार पर उसके यथार्थ स्वरूप की सम्भावना पर विचार तथा अनुमान किया जाता है। किसी 'शब्दों' से उनके सामाजिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है। इसमें मानव-विज्ञान, पुरातत्व (Archaeology), भूगर्भ विद्या (Geology) भूगोल तथा इतिहास से सहायता लेनी पड़ती है।

**वेदों में प्राकृत-तत्त्व (Prakritism in Veda)**—स्वाभाविक रूप से सारल्य प्रवृत्ति भाषा के विकास की जान है। यही सरलता की भावना भाषा के आदि काल से चली आ रही है। दूसरे शब्दों में भाषा के सम्बन्ध में इसे हम प्राकृत-तत्त्व भी कह सकते हैं। क्योंकि सामान्य लोगों में सहज रूप में बोली जाने वाली भाषा प्राकृत बही जाती है। इसका विशेष गुण सहज-वचन-व्यापार है। प्राकृत वैयाकरण अधिकतर यही मानते हैं कि प्राकृत भाषाएँ सभ्यता से निकली हैं। दूसरे और आधुनिक विद्वान् इस मत से सन्तुष्ट नहीं, क्योंकि वे यह मानते हैं कि प्राकृत सभ्यता से उत्पन्न न होकर वैदिक काल की बोलियों में विकसित हुई है। यह प्राकृत तत्त्व वैदिक युग की भाषा में बनमान था। जैसा कि विद्वान् मानते हैं। कुछ वैयाकरण इसका विवरण 'प्राक्-कृत अथवा प्राक्-कृत' करते हैं। यह प्राक्-कृत रूप में सभ्यता के पहिले की मानते हैं। यदि हम सभ्यता शब्द का इस अर्थ में लेकर वैदिक काल की उत्पन्न वैदिक प्रवृत्ति के अन्तर्गत





स्वर-ध्वनियाँ निम्न हैं—

स्वर : ऐ (e), ए (e) ओ (o), औ (o), तथा (ऌ) (ॡ) (यह स्वराहीन (unaccented) ए० e का रूप था) । विद्वानों के मतानुसार इन पाँचों स्वरस्वनियों का मूल ए० (e) -वर्ति हो र्ही, मत्र उसी में विकसित हुए थे ।

चित्र-लिपि—मिन्स आदि देशों में चित्र-लिपि में भाव व्यक्तिकरण को परिपाटी प्रचलित थी। पन्धर हड्डी काठ, मीष हाथी दाँत, पड़ की छान जानवरो की खाल तथा मिट्टी के बरतन आदि पर ये चित्र बनाये जाते थे। मैसा पोटामिया तथा सुमेरु जाति में नरम ईंटों पर कीता जाग चित्र बनते थे। ईरान के बादशाह दारा (५०० ई० पू०) के पुराने कलाभर तब प्राप्त हुए हैं। ये चित्र हम प्रकार से थे जैसे दीड़ने हुए बछड़े व गाय पानी का चित्र होने से प्यास के भाव को प्रकट किया जाता है। धर्मियवत्तर शाय व्यक्तिकरण चित्र से दुग्ध का भाव प्रकट किया जाता था।

सूत्रलिपि—प्राचीन ज्ञान में सूत्र, रम्यी तथा पंडा की छान छानि में गांधी जाती थी। किसी ज्ञान को याद करने की प्रवृत्ति का जो यह लिपि दानक है। आज भी रमण के लिए जगह रमण छानि में गांधी दान है। पुरुष में बंधातु नाम की दानियाँ होती हैं। इन रंगों ध्वजा धामा में इनमें कुछ जो बंधातु ध्वजा प्रसार की रम्यता ध्वजा ध्वजा का संधान मिल जाता है। इन मंडे दानि ध्वजा तथा ज्ञान ध्वजा का प्रतीक है। ये मंडे उलगी ध्वजा का ध्वजा में प्रचलित है।

ब्राह्मी लिपि—यह लिपि भारत की राष्ट्रीय लिपि थी। कुछ विद्वान इस लिपि का उत्पत्ति दोष पताही इसीका हीनाधार तथा नामा क किता ना कर स मानने है। ब्राह्मण में ब्राह्मी लिपि भारतका का भीनक लिपिकार है। इसकी प्राधान सर्वाङ्ग सुन्दरता से आह इसका कन ब्रह्म माना गया हा ना सोधर समान तथा ब्राह्मणी की लिपि हान छ ब्राह्मी बहनाई हा पश्यु इसका विद्वती लिपि क रूप से बाई भी दोष प्रमाण नहीं मिला है। भारत में ब्रह्मना व भी इस मन का सम्यक किया है। ई० पु० ३०० से २२० ई० तक प्रायः ब्राह्मी का प्रचार रहा। बाद में इसका प्रचल लिपियों का अन्य हुआ। जैसे गुप्त लिपि, कुलिश लिपि, नागरी और पारसी लिपि, अन्य कानर लिपि लिपि ब्राह्मी।



Class No. \_\_\_\_\_ Acc. No. 1340

Author \_\_\_\_\_ Book No. \_\_\_\_\_

Title महेश प्रसाद  
उपजी काव्य-प्रवेश

श्री जुविली नागरी भंडार  
पुस्तकालय  
बोकानेर ।

१. पुस्तक १४ दिन तक रखी जा सकती है ।
२. अन्य सदस्य से मांग न होने पर ही पुस्तक पुनः दी जा सकेगी ।
३. पुस्तक को फाड़ना तथा बिगड़ित करना नियम के विरुद्ध है ।
४. पुस्तक फाड़ने, खोने पर मूल्य या पुस्तक देनी होगी ।

पुस्तक को स्वच्छ व सुन्दर रखने में  
सहायता कीजिये ।







